RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 01 प्रकाशन तिथि : 25 दिसम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जनवरी 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

हम कदम यों ही आगे बढ़ाते रहे, तो धरा आसमां छोटे हो जायेंगे।।
जो बाँहे मिली वे मिली ही रहीं, तो नसीबों के साये भी मुस्करायेंगे।

माँ भगवती

जोधपुरी साफा एवं शेरवानी हाऊस

बन्धे हुए साफों के निर्माता एवं विक्रेता

हमारे यहाँ पर साफे, शेरवानी, तलवार, कटार, कंठा, सिरपेच, सेवरा एवं रेडीमेड धोती-कमीज, जोधपुरी सूट, ब्रिजिस, हेटिग शर्ट एवं ब्रांडेड कपड़े उपलब्ध है।

नरपत सिंह राठौड़

मो. 8107765970

29-30, चाँद बिहारी नगर, शनि मन्दिर के सामने,
मेन रोड़, खातीपुरा, जयपुर, राजस्थान

नव-वर्ष संदेश

पूज्य तनसिंह जी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना आज से 75 वर्ष पूर्व की। इसे हम एक अद्‌भुत घटना मान सकते हैं। सृष्टि में युगों में कुछ अद्‌भुत घटनाएँ घटती हैं उनमें से एक क्षत्रिय युवक संघ का अभ्युदय है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना ही एक क्रान्ति का प्रारम्भ है और आज के परिपेक्ष्य में तो क्रान्ति की आवश्यकता सबको लगती है। इसके लिए हमें समाज और राष्ट्र में जो बदलाव आ रहे हैं उनकी ओर नजर दौड़ानी पड़ेगी। एक शताब्दी पूर्व के इतिहास पर विचार करें तो हम पाएँगे कि इन दिनों में बहुत से परिवर्तन आए हैं। विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो अत्यधिक परिवर्तन नजर आएगा। इन बदलावों में बहुत से आवश्यक व अच्छे बदलाव भी हैं और बहुत से बुरे भी। अच्छों में संचार क्रान्ति, यातायात क्रान्ति आदि को गिन सकते हैं लेकिन इसके साथ ऐसे बदलाव भी हुए हैं जिन्हें घटता देखकर चिंता होती है, पीड़ा होती है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए किस प्रकार की दुनिया छोड़कर जा रहे हैं, किस तरह का संसार उन्हें उपहार में देकर जाएँगे। विरासत के रूप में उन्हें क्या सौंप रहे हैं। यह चिन्ता इसलिए हो रही है कि आज समाज का जो वातावरण है वह सांस्कृतिक रूप से विषैला हुआ है। व्यक्ति की सोच बदल गई है, उसमें संकीर्णता आ गई है, स्वार्थ आ गया है, जैसे कोई जहर उसके चिंतन में घुल गया है। सोच में इतना छोटापन आ गया है कि अपनी इच्छा या स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं देता बस वह किसी भी कीमत पर पूरा होना चाहिए, आदि ऐसी अनेकों बातें हैं जो चिन्तित करती हैं।

आज जिस चिन्ता से पूरा समाज चिन्तित है उसी चिन्ता ने 75 वर्ष पूर्व पूज्य तनसिंह जी को चिन्तन के लिए विवश किया और उसी चिन्तन ने क्रान्ति के रूप में श्री क्षत्रिय युवक संघ ने जन्म लिया। 75 वर्ष पूर्व से लेकर आज तक जो पूज्य तनसिंह जी, श्रद्धेय आयुवान सिंह जी, श्रद्धेय नारायण सिंह जी के द्वारा धरोहर के रूप में हमें दिया है और माननीय भगवान सिंह जी व अन्य वरिष्ठ स्वयंसेवकों ने उसे आगे बढ़ाया है, उसी से आज का वर्तमान बना है। निश्चित ही उन स्वयंसेवकों द्वारा कर्म निष्ठा, ज्ञान गरिमा और भाव गाम्भीर्य के साथ अतर्क अनुकरण का परिणाम हमें धरोहर के रूप में मिला, वही आज हमें अंकुरित होता दिखाई देता है। हमारे पूर्वगामियों ने पूज्य तनसिंह जी के विचार दर्शन को जीवन दर्शन बनाने के लिए जीवन पर्यन्त कार्य करके अब हम पर विश्वास किया है। उन्होंने जो कुछ दिया है, उसे संभाल कर रखना है, सिद्धान्तों को आचरण में उतारते रहना है, मर्यादाओं का पालन करना है, पूज्य तनसिंह जी के विचारों को जन जन तक पहुँचाने के लिए उन्हीं पूर्वगामियों की भाँति जीवन पर्यन्त कर्मरत रहना है। अभी हम श्री क्षत्रिय युवक संघ के 75 वर्ष पूर्ण होने पर **''हीरक जयन्ती''** को विशाल समारोह के रूप में मना रहे हैं। इसके लिए पूरे वर्ष भर तक हमने समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचकर संघ की महत्ता को समझाने का प्रयास किया। इससे समाज की हमसे अपेक्षा और बढ गई है, हमारी जिम्मेदारियाँ भी और बढ गई हैं। इसके लिए हमें अपने आप पर गर्व नहीं करना है बल्कि पूज्य तनसिंह जी द्वारा सौंपी गयी सामूहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली की लम्बी परम्परा की प्रक्रिया पर गर्व करना है। हमें यह भी सतत् स्मरण रखना होगा कि हमें इस गौरवमयी परम्परा को बनाये रखना है। पूज्य तनसिंह जी द्वारा स्थापित संघ संसार को सुख, शान्ति प्राप्त करवाने वाला मार्ग है, इस मार्ग को संसार तक पहुँचाने का बीड़ा हम सबने उठाया है। त्यागमयी परम्परा को स्वेच्छा से स्वीकार कर पूर्वजों के मार्ग पर चलकर उस परम सुख की प्राप्ति करें और फिर अनुभव से दुनिया के मार्ग को बदलकर सुख, शान्ति व समृद्धि लाएँ। यही श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना का ध्येय रहा है। यही हमारा क्षात्रधर्म है। निश्चित ही हमारे सामने बहुत बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकार करके अविलम्ब चल पड़ना है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि आज के युग में यह बहुत ही कठिन अवश्य है लेकिन असम्भव नहीं है। इसके लिए एक-एक व्यक्ति को अपना दृढ़ निश्चय करके चल पड़ना होगा और फिर व्यक्ति-व्यक्ति से संगठन को शक्तिशाली बनाकर सामर्थ्य प्राप्त कर संसार को बदल डालना है। **मोड़ देंगे नदियां किन्तु मुड़ेंगे नहीं** पूज्य तनसिंह जी के इस उद्‌घोष के साथ संघ के 76वें वर्ष में प्रवेश करने के लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ हम सबका आह्वान भी करता है और साथ ही नववर्ष के उपलक्ष में बधाई भी प्रेषित करता है।

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास
(संघप्रमुख)

संघशक्ति

4 जनवरी, 2022

वर्ष : 58 अंक : 01

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ नववर्ष संदेश	✍ श्री लक्ष्मणसिंह बेण्याकांबास	03
☞ समाचार संक्षेप	✍	05
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	10
☞ पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	✍ श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	14
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी जगदात्मानन्द	16
☞ यदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	18
☞ उठो क्षत्रिय	✍ दीपसिंह रणधा	19
☞ विचार-सरिता (नवषष्टि: लहरी)	✍ विचारक	20
☞ इतिहास के झरोखे में गोगा चौहान	✍ श्री मातुसिंह मानपुरा	22
☞ कट्टरता और उदारता	✍ कृपाकांक्षी	25
☞ राजपूत नारी सब पर भारी	✍ कर्नल हिम्मतसिंह पीह	27
☞ माता का दायित्व	✍ गोविन्द सिंह कसनाऊ	31
☞ निष्काम कर्म	✍ भागीरथसिंह लुणोल	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

हीरक जयन्ती :

22 दिसम्बर, 2021 को श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना के 75 वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। इसी उपलक्ष में क्ष.यु.संघ की हीरक जयन्ती मनाने हेतु तैयारियाँ बड़े उत्साह के साथ चलती रही। पूरे वर्ष भर में हीरक जयन्ती की तैयारियाँ चलती, उसमें कोरोना सम्बन्धी सरकारी निर्देशों ने बाधा डाल दी। हालांकि विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से संघ की बात समाज में पहुँचाने का कार्य चल रहा था जो निर्देशों की पालना करते हुए हो रहा था, परन्तु बड़ा समारोह कर पाएँगे या नहीं यह असमंजस बना हुआ था। 10 नवम्बर को जब संख्या सम्बन्धी प्रतिबंध की छूट हुई तब समय बहुत कम रह गया था पर चारों तरफ से संघ के स्वयंसेवकों का आग्रह आना प्रारम्भ हो गया कि हीरक जयन्ती का बड़ा समारोह किया जाना चाहिए। माननीय भगवानसिंहजी ने प्रतिबन्धों की छूट होते ही समारोह की तैयारियों के निर्देश दे दिए थे अत: संघप्रमुखश्री के सान्निध्य में सक्रिय स्वयंसेवकों ने तैयारी की योजना बनाकर सभी को निर्देश दिए और सभी जगह प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हो गया।

जगह-जगह जयन्ती समारोह के पोस्टरों का विमोचन किया गया और जगह-जगह पोस्टर चिपकाना सभी जगह प्रारम्भ हो गया। जयपुर में 24 नवम्बर को संघशक्ति प्रांगण में हुए पोस्टर-विमोचन में संरक्षकश्री भगवानसिंहजी, संघप्रमुखश्री लक्ष्मणसिंहजी के अतिरिक्त राज्य सरकार के मंत्री, पूर्वमंत्री, विधायक, पूर्व सांसद भी बड़ी संख्या में उपस्थित रहे।

बाड़मेर स्थित 'तनसिंह सदन' से दो पहिया वाहन यात्रा प्रारम्भ हुई जो 22 नवम्बर से 3 दिसम्बर तक अनेक जिलों की यात्रा करते हुए जयपुर में संघशक्ति कार्यालय पहुँची जहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया। 2500 किलोमीटर की इस लम्बी यात्रा में प्रत्येक गाँव में यात्रा का स्वागत किया गया तथा हर संभाग में नये-नये यात्री अपने संभाग तक की यात्रा में जुड़ते गये। अनेक स्थानों पर उप स्थान से दो पहिया वाहनों पर स्वयंसेवक यात्रा के सामने गये और यात्रियों का स्वागत कर उन्हीं के साथ यात्री बन गए। अनेक शहरों में भी वाहन रैली का आयोजन हुआ। राजस्थान के बाहर गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटका में भी वाहन रैली निकाली गई।

प्रचार-प्रसार के लिए सम्पर्क यात्राएँ चारों ओर प्रारम्भ हुई जिसमें गाँव-गाँव पहुँचकर लोगों को समारोह में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया। जगह-जगह बैठकें की गई है और उपस्थित जन को जिम्मेवारियाँ भी दी गई। बड़े शहरों में टोलियाँ बनाकर अलग-अलग कॉलोनियों में मिटिंगें व सम्पर्क किया गया। महिलाओं ने भी टोली बनाकर सम्पर्क करना प्रारम्भ किया जो निरंतर चलता रहा।

जयपुर के एलबर्ट हॉल से संघशक्ति कार्यालय तक दो पहिया वाहन रैली निकाली गई। इस रैली का जगह-जगह पुष्प वर्षा से स्वागत हुआ। बड़े अनुशासित ढंग से निकली रैली ने सामाजिक एकता का संदेश दिया, जिसकी अगुवाई भाजपा और कांग्रेस के नेता साथ मिलकर कर रहे थे। रैली लगभग दो किलोमीटर लम्बी थी।

महिलाओं ने भी पैदल पथ संचलन किया। केशरिया वस्त्रों में बालिकाओं की अगुवाई में चलती महिलाओं की कतारें लगभग सवा किलोमीटर लम्बी थी।

जयपुर में विभिन्न श्रेणी के लोगों से सम्पर्क साधने के लिए उनके प्रतिनिधियों की बैठकें की गई। विद्यार्थियों, मेडिकल कार्यों से जुड़े लोग, वकीलों के प्रतिनिधि, राजनैतिक क्षेत्र के लोगों, सरकारी कर्मचारियों, व्यवसायी वर्ग, पत्रकार आदि-आदि की बैठकें आयोजित की गई। शिक्षक वर्ग, विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधि गण, पार्षद गण, ग्रामीण संस्थाओं के प्रतिनिधियों से वार्ता की गई। राजनैतिक गतिविधियों से जुड़े सामाजिक बन्धुओं ने अपने-अपने क्षेत्र में सम्पर्क करने के अलावा क्षेत्र के लोगों को जिम्मेवारियाँ भी दी। धोलपुर, भरतपुर जैसे क्षेत्र जहाँ पहले संघ का कोई विशेष सम्पर्क नहीं था, वहाँ भी सम्पर्क साधा गया।

(शेष पृष्ठ 9 पर)

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति प्रांगण में आयोजित विशेष शिविर में 16.10.2007 को उद्बोधित संदेश}

श्री क्षत्रिय युवक संघ बुद्धि का विषय जितना है, उससे अधिक भाव का विषय है। इसके शिविरों में हमने सुना है कि बुद्धि स्वार्थी हो जाती है यदि वह अकेली अनियन्त्रित चलती हो। भाव अनियंत्रित होकर बहक सकता है या तानाशाह बन सकता है। अकेले अनियंत्रित रहने में बुद्धि तथा भाव दोनों में ही खतरा है। संघ का कार्य अकेले भाव या अकेले बुद्धि से चलता हो, ऐसा नहीं है। पर बुद्धि को नियंत्रित कर भावना का आधिक्य है। अत: संघ में स्वार्थ का खतरा बहुत कम है पर बहकने का खतरा अधिक है। ऐसे खतरों का सामना कैसे कर सकते हैं, उसका उपाय ढूंढना चाहिए। वह उपाय व्यक्तिश: न ढूंढ पाएँ तो ऐसे विशेष शिविरों में भागीदारी बनाकर संभवतया हम उपाय ढूंढ सकें। संभावना बनती है कि इस प्रकार के विशेष शिविरों के माध्यम से हम उन खतरों का सामना कर सकें और पार जा सकें।

कार्य क्षेत्रों में, हर विभाग में कार्य करने वालों को नई शक्ति देने के लिए रिफ्रेशर कोर्स होते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि कार्य करने वाले ने अपने कार्य का प्रशिक्षण पहले न ले रखा हो। वह प्रशिक्षण प्राप्त है, इसलिए यह न मान ले कि अब मुझे और कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है। पर उन पर नियंत्रण रखने वालों का सोच रहता है कि यह कार्य लम्बे समय से करते हुए रहने से एक ढर्रा सा बन गया है अत: बदलाव की आवश्यकता है। तब कार्य विधि में नया मोड़ दिया जाकर नई ताजगी देने हेतु कोर्स करवाए जाते हैं। ये विशेष शिविर भी वैसी ही ताजगी देने वाले हैं। तभी हम इन शिविरों में आते हैं।

आचरणहीन ज्ञानी तर्क और विश्वास की ढाल में ज्ञान का दुरुपयोग करते हैं। यह बुद्धि का क्षेत्र है। क्षत्रिय युवक संघ को हमने बुद्धि से जाना है। जो भूल जाते हैं वह भी नए शिविरों में फिर पा लेते हैं। पर आचरण के क्षेत्र में प्रारम्भ ही नहीं होता। इसलिए संभावना है कि सारी उछल-कूद बुद्धि से ही हो रही हो। ऐसा हो तो जानकारियों का बोझ लिए फिर रहे हैं। आचरण में निखार न आए तब ऐसा मानना कि 'जो मर गए उनसे तो अच्छे ही है', ऐसी बात विकास की नहीं है। यदि तुलना ही करनी है तो उनसे करनी चाहिए जो साधना क्षेत्र में आगे बढ गए हैं।

जो मैंने जाना और जो मैं हूँ, इसमें कितना अन्तर है यह निरंतर देखते रहने की बात है। युधिष्ठिर ने जाना और आचरण में लाया गया-सत्यंवद...। वैसे आचरण वाले ज्ञानी बनने की आवश्यकता है। किसी पर उठता हुआ हाथ रुक जाए, हल्की बात जबान पर आते-आते रुक जाय तो धीरे-धीरे आचरण के परिणाम आने प्रारम्भ होंगे। हर कार्य के समय यह स्पष्ट विचार बन जाए कि यह सही कार्य है। आचरण सम्बन्धी हर कार्य में हम स्वयं प्रश्न करना शुरू कर दें। स्वयं ही प्रश्न करें और स्वयं को ही उसका जवाब मिलना प्रारम्भ हो जाए-यही प्रभु का निर्देश है।

हीन आचरण तो किसी भी स्थिति में नहीं बनना चाहिए। अपने आप को टटोलते रहें और देख-देखकर ढलान को रोकें। हीन आचरण वाले समाज का कार्य करेंगे तो समाज को डूबाने का कार्य ही करेंगे। प्रकृति और इन्द्रियों के वशीभूत होकर हीनता को अपने आचरण में न पनपने दें।

दो बातों पर ध्यान दें –

1. हमारा ज्ञान आचरण में ढल रहा है या नहीं। नहीं, तो जीवन व्यवहार में ज्ञान को उतारकर आचरण को निर्मल बनाएँ।

2. हम हीन आचरण तो नहीं कर रहे। यह ध्यान रखकर इससे बचें।

इसी में हमारा पुरुषार्थ है।

❑

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंह जी बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उनकी जीवन यात्रा उस समय शुरू हुई जिस समय क्षत्रिय समाज तमोगुण से आक्रान्त होने के कारण काफी कमजोर हो चुका था। क्षत्रिय समाज को कमजोर समझ कर इससे ईर्ष्या व द्वेष करने वाले तत्व बड़ी उत्सुकता से इनका शोषण व उन्मूलन करने में तत्परता दिखा रहे थे, तो दूसरी तरफ तत्कालीन सरकार बदले की भावना में क्षत्रिय समाज का सर्वस्व लूटने में लगी हुई थी तथा कुठाराघात व आघात पर आघात कर रही थी। पूज्यश्री ने अपनी जीवनयात्रा जिस समय शुरू की, उस समय समाज का जो चित्र व हालात उनके सामने था, उसका दिग्दर्शन करते उनके सम्बन्ध में उन्होंने जो कहा, उन्हीं की जुबानी–

**''इन आँखों से हमने हमको विश्वजयी बनते देखा।
इन आँखों से इज्जत पर ही कभी छुरी चलते देखा।।''**

फिर उन्होंने अपने ही समाज बन्धु को सम्बोधित करते हुए कहा –

''मेरे भिखारी मित्र! मेरी यह यात्रा उस समय शुरू हुई जिस समय मैं भिखारी तो नहीं बना था, पर मेरा सर्वस्व लुटने को था। मेरी सम्पत्ति धरती और धन को मेरे देखते ही देखते मेरी आँखों के आगे छीन लिया गया और मैं चूं तक न कर सका और न तुम ही कुछ कर सके। अब मेरे पास अगर कुछ था, केवल एकमात्र मेरी कही जाने वाली वस्तु थी, तो वह मेरा इतिहास और संस्कृति थी। भिखारी हो गया पर खानदानी भिखारी होने का गर्व नहीं गया और मैंने इसी सम्पत्ति की रक्षा के लिए भीख माँगना शुरू किया तब से लेकर वर्षों तक मैं नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर और जंगल-जंगल में भीख माँगता जा रहा हूँ-कोई दो, जो कुछ दे सकते हो दो, मेरी झोली छोटी है और तू दातार है।''

पूज्य श्री तनसिंह जी को किसी भी भौतिक पदार्थ की भीख की आकांक्षा नहीं थी, इसलिए उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा –

**''नहीं सम्पदा हमें चाहिए, हम हैं नहीं भिखारी।
हम तो किस्मत के मारे हैं, हाथों किस्मत मारी।।''**

भिखारी तो उनका मात्र नाम है, गुण नहीं। वे तो अपने समाज की आन-बान, इज्जत, सम्मान व धरोहर की रक्षा के लिए सबके जीवन की भीख की आकांक्षा लेकर समाज में सर्वत्र घूमा करते थे यानी वे समाज का नव निर्माण कर समाज के लोगों के जीवन को संवारने का लक्ष्य लेकर चले थे जिसमें समाज के लोगों के सहयोग की अपेक्षा की। वे तो ऐसे जोगी थे जो अपनी जोग अवस्था में नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर और जंगल-जंगल घूम-घूमकर लोगों के जीवन की भीख मांगा करते थे और कहते थे –

**''देव योग से बना भिखारी, माँग रहा निज कर पसार
दे दो! दे दो! अब तो दे दो! जो कुछ देना है सो दे दो!''**

वे अपना जीवन देकर उन सबका जीवन भीख में खरीदते थे, जो समाज में जीवन जुटा सके, गौरव जुटा सकें और सम्मान को जन साधारण में बाँट सकें। इसलिए उन्होंने आगे कहा–

**''तू देगा तुझको देना है, हक मेरा बस हाँ लेना है।
ना दे, हाँ कर, मन न हार, मेरी नन्हीं यह झोली तू दातार।।''**

क्षत्रिय समाज में क्षात्र शक्ति का लोप होने जा रहा था इसलिए समाज में क्षात्र शक्ति का पुन: संचार करने के लिए पूज्य श्री तनसिंहजी को भिखारी बनना पड़ा। समाज का नव निर्माण करने व हम लोगों में सुप्त पड़ी क्षात्र-शक्ति को जागृत करने के लिए पूज्य श्री गाँव-गाँव, द्वार-द्वार झोली पसार कर लोगों का जीवन भीख में मांगा करते थे, फिर भी पूज्य श्री को आशानुरूप भीख नहीं मिली और उनकी झोली खाली ही रही। उनकी झोली खाली क्यों रही? जानते हो! नहीं जानते हो तो पूज्य श्री की झोली

खाली क्यों रही, पूज्य श्री इसका कारण बताते हैं, उन्हीं की जुबानी–

''लोगों ने दिया भी बहुत। इतना दिया, जितना इतिहास में आज तक कभी नहीं दिया गया, फिर भी मेरी झोली भरी नहीं, खाली ही रही। इसका कारण भी जानते हो? –नहीं जानते तो मैं बताता हूँ। एक ऐतिहासिक घटना है। गोपालदास के अनेक पुत्र थे। ज्योतिषि ने बताया कि अन्य तो सब रण में लड़ते हुए वीर गति प्राप्त करेंगे किन्तु एक ऐसा होगा, जो मांचे की मौत मरेगा। तब उन पुत्रों में बल्लूजी नामक एक पुत्र ने प्रतिज्ञा की कि वह एक बार तो अपने लिए और दूसरी बार उस भाई के लिए रण में लड़कर मारा जाएगा। कहा जाता है, एक बार वह आगरा में अमरसिंह की लाश के लिए लड़ता हुआ मारा गया और दूसरी बार देबारी की घाटी में लड़ता हुआ मारा गया। तो भिखारी भइया! मेरी झोली अब तक इसलिए नहीं भरी, कि उस बल्लूजी के एक ही भाई था और आज जितने बल्लूजी हैं उनके एक–एक के हजार हजार भाई हैं।''

हमारी सामाजिक व्यवस्था जैसी अन्यत्र कहीं भी ऐसी सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। अपना बलिदान देकर दूसरों को जीवनदान देना सदियों से हमारी परम्परा रही है। ऐसी अनूठी परम्परा को किसकी नजर लग गयी इस पर किसकी काली छाया पड़ गयी, इस पर किसकी बुरी नजर है, जिसके कारण हमारे तप और त्याग में कमी आयी। इस कमी के कारण हम क्षात्र परम्परा के पायदान से हटकर नीचे के पायदान पर आ खड़े हुए हैं।

परिणामस्वरूप हमारी सामाजिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त होती जा रही है। हमारी क्षात्र परम्परा मिटने को है। हमारा क्षात्र धर्म और राष्ट्र धर्म दिनों दिन धूमिल होने से हम निस्तेज होते जा रहे हैं और आये दिन माँचे की मौत मरने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है इसकी वजह बताते हुए पूज्य श्री तनसिंह जी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी –

''भारत की जैसी सामाजिक व्यवस्था थी उसमें शोषण का कहीं नामोनिशान नहीं था। भारतीय परम्परा की मूल धारा में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ, वह था, अपने आपको मिटाकर उसकी नींव पर देश, धर्म और मानवता की इमारत खड़ी करना और इसीलिए भारतीय जीवन ही सभी ऐतिहासिक विपरीत परिस्थितियों में इसी संजीवनी शक्ति के कारण इतने लम्बे काल तक जीवित रहा। शनैः शनैः विज्ञान की उन्नति ने हमें कुछ इस प्रकार के साधन जुटा दिये, कि मनुष्य के सामने संसार बहुत छोटा हो गया। सुदूर पूर्व और सुदूर पश्चिम के बीच सांस्कृतिक तो नहीं, किन्तु भौतिक सम्बन्ध स्थापित हो गए। मनुष्य का दृष्टिकोण जो देश काल की सीमाओं से घिरा हुआ था, विस्तृत होने लगा और वह पहली ही बार सारे संसार की समस्याओं का एक हल निकालने पर उतारू हो गया। काल की इस प्रक्रिया में सबसे घाटे में भारत रहा, क्योंकि वह यद्यपि ज्ञान–विज्ञान सम्पन्न था, समुचित संस्कार से उसका जीवन ओत–प्रोत था, किन्तु उसका सम्पर्क विज्ञान की भौतिक उन्नति के कारण उन लोगों से हुआ, जो अर्ध संस्कृत या असंस्कृत थे। पश्चिम का असंस्कृत और अविकसित मस्तिष्क अभी सैकड़ों वर्ष पीछे था और भारत ने जिस सत्य का उपार्जन किया, वह उसे कल्पना मानने लगा। भारत की अनुभूत औषधि असंस्कृत लोगों के लिए दकियानूसी ख्याली पुलाव थी। वे कभी सोच ही नहीं सकते थे, कि मनुष्य का इतना विकास हो जाएगा, कि वह समस्त पदार्थों के निर्भेद की स्थिति तक पहुँच जाए। इस प्रकार अर्ध–संस्कृत व अविकसित जातियों ने अब तक जिस सत्य की उपलब्धि की, उसी को पूर्ण सत्य मानकर आग्रहपूर्वक लोगों पर थोपने लगी। भारत इस लड़ाई में हार गया और उस पर अन्धकार छा गया। यूरोप ने वैयक्तिक स्वतंत्रता और विकास के लिए समान अवसर के सिद्धान्त को ही सर्वेसर्वा मानकर जनतंत्र के आधार पर सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था की बुनियाद खड़ी की। मार्क्सवाद ने भी अपना अर्धसत्य उसके साथ तुलना में खड़ा किया और बताया कि वह तंत्र भी शोषण का नया तरीका है। दोनों आपस में लड़ ही रहे थे, कि भारत अपना पन भुलाकर, अपना ज्ञान ताक पर रखकर उन दोनों में कौन ठीक है,

इसी के निर्णय में जुट गया, ताकि वह अपने देश में भी उसी वस्तु को ले आवे।''

पूज्य तनसिंह जी बताते हैं कि भारतवासी दुनिया के सम्पर्क में आकर अपना पन भूले, अपना अर्जित ज्ञान भूले, भूले सो तो भूले, साथ में राष्ट्र चरित्र व समाज चरित्र को भी खो बैठे और यही बना हमारी दयनीय स्थिति का कारण। अपनों को दुखी देखकर पूज्य श्री तनसिंह जी ने कुछ करने की ठानी और पूज्य श्री ने दु:खी जन को सम्बोधित करते हुए कहा –

''पर तुम बहुत कुछ कर सकते थे, फिर भी कर क्यों नहीं पाये, क्योंकि, तुम्हारे अन्दर समाज चरित्र का अभाव था। संगठित और अनुशासित होकर जीवित रहने के संस्कार पश्चिम की व्यक्तिगत स्वाधीनता और बौद्ध धर्म के व्यक्तिवाद के नीचे दबकर नष्ट हो गए। मैंने छोटी अवस्था में ही तुम्हारी दुख भरी अवस्था देखी। जितने आँसू मैंने अपने और अपने कुटुम्ब के लिए नहीं बहाए, उतने तुम्हारे लिए बहाए। मेरा जी तेरी इस अवस्था पर तड़फ रहा था, पर करने के लिए कोई मार्ग नहीं था। चारों ओर प्रयास भी हो रहे थे। कई सभाएँ भी साधन सम्पन्न होकर कार्य कर रही थी। फिर भी ऊपर लिखी मूल भावना की कमी दिखाई दे रही थी। चारों ओर समाज चरित्र की भाषा लुप्त होती गई। रोने और आँसू बहाने से जब तुम्हारी हालत न सुधरी तो कुछ करने की ठानी। पर कर न सका। कई दुखी बन्धु थे, जो ईमानदारी से मेरे साथ कंधे से कंधे भिड़ाकर बढने को उत्सुक थे, पर मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। आज सोचता हूँ कि मार्ग दिखाई इसीलिए नहीं दे रहा था, कि हमें अपना लक्ष्य दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। स्वामिभक्ति और स्वप्नों की रक्षा का लक्ष्य मुझे अत्यन्त तुच्छ और निरर्थक प्रतीत हुआ पर जिस दिन मैंने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया, उस दिन से उस लक्ष्य का मार्ग भी स्पष्ट हो गया और उत्तरोतर स्पष्ट होता जा रहा है।'' **(क्रमश:)**

पृष्ठ 5 का शेष

समाचार संक्षेप

इस समारोह के लिए होने वाली तैयारियों में इस बार अत्यधिक उत्साह नजर आया। पूरे समाज में जैसे एक त्वरा सी पैदा हो गई हो। लोगों का उत्साह अद्‌भुत था। जिनको श्री क्षत्रिय युवक संघ की अधिक जानकारी नहीं थी ऐसे लोगों में भी जो जोश था, वह प्रदर्शित कर रहा था कि समाज में कुछ करने की भूख है। समाज के लोगों का यह सामाजिक भाव उत्तरोतर दृढता प्राप्त करता जाए तो सामाजिक विकास की राह खुल जाएगी।

हीरक जयन्ती के अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकाशित की गई। श्री क्षत्रिय युवक संघ की विचारधारा, दर्शन की जानकारी पाठकों को मिल सके यही इस स्मारिका का उद्देश्य था, इसलिए पू. तनसिंहजी, पू. आयुवानसिंह जी, पू. नारायणसिंह जी व संघ के समर्पित स्वयंसेवकों के पूर्व प्रकाशित लेख इसमें सम्मिलित किए गए हैं।

पुण्यतिथि :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी की 42वीं पुण्य तिथि 7 दिसम्बर को श्रद्धांजलि अर्पित कर मनाई गई। इस अवसर पर संघ प्रमुख श्री द्वारा वर्चुअल माध्यम से, संघ के अधिकृत ट्विटर एकाउण्ट पर कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। पूज्य तनसिंहजी के जीवन सम्बन्धी जानकारी के साथ उनकी श्रेष्ठ कृति श्री क्षत्रिय युवक संघ की कार्य प्रणाली विस्तार से समझाई गई। जयपुर में संघशक्ति प्रांगण में श्रद्धांजलि कार्यक्रम आयोजित हुआ। बाड़मेर में पूज्यश्री के स्मारक पर श्रद्धांजलि दी गई। मुम्बई में दक्षिण मुम्बई प्रान्त की तनेराज शाखा में, उत्तर मुंबई प्रान्त की वीर दुर्गादास शाखा में, बाप क्षेत्र में महेन्द्रसिंह भाटी मेमोरियल छात्रावास में, बीकानेर में शार्दुल राजपूत छात्रावास में, कोलायत में, केकड़ी में, आयुवान निकेतन कुचामन में, जोधपुर की हनवंत शाखा में, लूणी में, बालेसर, सेखाला, शेरगढ़, चामू, तिंवरी, भोपालगढ़, पुणे, मारवाड़ राजपूत सभा भवन में, गुजरात व राजस्थान की विभिन्न शाखाओं में श्रद्धांजलि अर्पित कर पूज्यश्री की पुण्य तिथि मनाई गई।

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–109

अज्ञानी हैं जो कहते हैं कि हमारा अमुक कर्म निष्फल हो गया, और वे पुरुष कितने भोले हैं जो अपनी इच्छा के अनुरूप ही फल–प्राप्ति की सोचते हैं, पर इन सबसे बढकर उन लोभी कृषकों पर हँसी आती है जो एक मन बीज बोकर हजार मन अनाज की उत्पत्ति की आशा लगाए रहते हैं, पर उन बालकों को क्या कहा जाए जो आम की गुठली बोते ही नहीं उससे पहले मीठे आम खाने के लिए अधीर हो उठते हैं।

बोये बिना सेते हैं लावणी की हाम,
अधीर मन के मूर्ख का ही काम।

इस अवतरण में साधक समाज का मानसिक दर्शन करवा रहे हों, ऐसा लगता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति से दूर रहकर टीका, आलोचना करने वाले वर्ग बैठे–बैठे सामाजिक प्रवृत्ति की टीका–टिप्पणी अविरल रूप से करते ही रहते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ इतने सालों से काम कर रहा है, क्या हुआ? कोई परिणाम दिखता नहीं है। हम तो कहते हैं कि जिसको जो करना है वह करे, पर इस संसार में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। फलां आदमी ने कितनी मेहनत कितने सालों तक की, पर कुछ कर सके? उनका तो घर ही बर्बाद हो गया। आलोचक और टीकाकार इस तरह अपना पाण्डित्य प्रकट करते हैं।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की इस तरह टीका करने वाला, फल की, परिणाम की इच्छानुसार अपेक्षा करने वाला विशाल वर्ग है। समय–समय पर संघ की प्रवृत्ति की समीक्षा करने वाला वर्ग कहता ही है कि इतने साल से प्रवृत्ति चल रही है पर कौन हैं इसमें? मैं, आप और रतनिया। ऐसी अनावश्यक और निराशाजनक टिप्पणी करने वाला वर्ग बड़ा है। वह वर्ग बैठे–बैठे, बिना हाथ–पाँव हिलाए अपनी इच्छा के अनुसार परिणाम चाहता रहता है। ऐसा वर्ग एक मण बीज बोकर हजार मण अनाज की उत्पत्ति की आशा रखता है। अर्थात् थोड़ा–कुछ करके सब कुछ पा लेना चाहता है। ऐसा चाहने वाले हँसी के पात्र ही बनते हैं। आम बोये बिना ही आम खाने के लिए अधीर बच्चे के दृष्टांत के माध्यम से बहुत कुछ कह दिया गया हो ऐसा लगता है। यह प्रवृति क्षत्रिय के आदर्श जीवन–व्यवहार को जीवन में उतारने का कार्य कर रही है, जो कुछ हरकतों से संभव नहीं है। इसके लिये लगन, अभ्यास, धैर्य के साथ कर्मरत रहना पड़ता है। इन बातों को ध्यान में रखकर ही सच्ची समीक्षा की जा सकती है।

इस अवतरण से एक बोध लें। कोई अच्छी प्रवृत्ति या अच्छा कार्य हो रहा हो, उसमें सहयोग न दे सकें तो कोई बात नहीं किन्तु उसकी व्यर्थ टीका, आलोचना करके समाज दोषी न बनें।

अर्क– स्वार्थी व्यक्ति आवश्यक कर्म किए बिना ही लाभ–प्राप्ति की सोचता रहता है।

अवतरण–110

एक बार मैं अपनी साधना द्वारा अखण्ड और अनन्त शक्ति का निर्माण कर लूं। नगर–नगर, गाँव–गाँव, घर–घर, झोंपड़ी–झोंपड़ी में शक्ति का अखण्ड दीप प्रज्वलित होने लग जाए, तब संसार का राज्य–वैभव और आनन्द मेरी ओर उसी भाँति स्वभाववश आकर्षित होंगे जिस भाँति अनन्त और अखण्ड समुद्र की ओर समस्त जलधाराएँ। सामुज्य, सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य मुक्तियाँ मेरे लिए वैकल्पिक विषयों के रूप में आ उपस्थित होंगी। तो धैर्य पूर्वक साधना में लगा रहूँ,–बस यही एक उपाय है।

अटूट, अगाध शक्ति से विश्व पाये हार,
भव का चक्रव्यूह करवा दे पार।

इस अवतरण में साधक श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति का उद्देश्य स्पष्ट रूप से समझा देते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ अखण्ड शक्ति का निर्माण करना चाहता है। इस शक्ति-निर्माण के लिए समाज के सभी वर्गों को साथ लेना चाहता है। इसीलिए चाहते हैं-नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर, झोंपड़ी-झोंपड़ी में इस शक्ति का अखण्ड दीपक प्रकट कर दूं। इन शब्दों को बोल देना या कागज पर प्रकट करना तो आसान है लेकिन यह भागीरथ कार्य कितना कठिन है, कितना पुरुषार्थ और परिश्रम माँगता है इसकी जानकारी तो जो इस काम में जुड़ता है, वही जान सकता है। इसीलिए तो पू. तनसिंहजी ने एक गीत की पंक्ति में कहा है- 'सरल है फूलों पे सोना, काम काँटों से यहाँ।'

यहाँ पर भाषणों द्वारा शक्ति निर्माण करने की बात नहीं है। यहाँ तो खून, पसीना और आँसू बहाकर शक्ति निर्माण की बात है। यह शक्ति निर्माण हो जावे तो दुनिया इस शक्ति और संगठन की ओर किस तरह आकर्षित होगी उसका वर्णन इस अवतरण में किया गया है।

इस शक्ति निर्माण से जगत की विचारधाराएँ तो इसकी ओर आकर्षित होनी ही है, मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य मुक्ति भी सरल और सुलभ बन जाती है। क्षात्रधर्म पालन के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्र कहते हैं। यही बात साधक अपने इस वाक्य में स्पष्ट करते हैं कि-'सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य मुक्तियाँ मेरे लिए वैकल्पिक विषयों के रूप में आ उपस्थित होंगी।' सायुज्य अर्थात् परम शक्ति के साथ मिल जाना, सालोक्य का अर्थ है उस परमशक्ति के लोक में निवास होना, सामीप्य अर्थात् समीप रहना और सारूप्य अर्थात् वैसा ही रूप बन जाना। मुक्ति के ये चार प्रकार बताये गये हैं। क्षात्रधर्म का पालन करने से इनमें से जिस भी प्रकार की मुक्ति चाहें, सरल और सहज बन जाती है।

जगत को आकर्षित करने वाली और मुक्ति को सरल व सहज बना देने वाली अखण्ड और अनन्त शक्ति का निर्माण होगा। किस तरह से? अखण्ड और अनन्त शक्ति का सीधा अर्थ है मजबूत संगठन। ऐसा संगठन बनाने के लिए समाज के प्रति पीड़ा, प्रेम, लगाव, आत्मीयता, निष्ठा और त्याग-बलिदान की, जीवन न्योछावर करने की तैयारी चाहिए। संगठन की बातें तो बहुत होती हैं पर उनके संगठन के दर्शन भी नहीं होते।

ऐसे समाज संगठन की कमी को दूर करने के लिए पू. तनसिंहजी ने अपने जीवन की आहुति देकर एक आदर्श, मजबूत संगठन की राह श्री क्षत्रिय युवक संघ की नींव डाली, जिस पर संगठन की मजबूत इमारत खड़ी हो रही है। जिसके द्वारा जगत का आकर्षण खिंचा आएगा और चार प्रकार की मुक्ति सरल, सहज, सुगम बन जाएगी। इसके लिए अवतरण के अन्तिम चरण में कहते हैं-धैर्यपूर्वक साधना में लगा रहूँ-बस यही एक उपाय है। अर्थात् धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहे तो जगत में कुछ भी अशक्य नहीं है। शक्य बनाने की चाबी अपने हाथ में है- 'टूटेंगे सारे खुशियों के ताले कुटिया वाले।'

अर्क - नव निर्माण के लिए त्याग और बलिदान आवश्यक शर्तें हैं।

अवतरण-111

अब मुझे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि मेरी भावनाओं की नदियों का प्रेम प्राप्त करने के लिए संसार के ज्ञान का सागर बेचैन हो रहा है, मेरे साधनों के दैन्य से भीख माँगने के लिए शहंशाहों की राज्यलक्ष्मी भटक रही है, मेरी निश्चयात्मक धारणाओं की अटूट श्रद्धा के समक्ष संसार के सभी तर्क मूक होकर आत्म-समर्पित हो रहे हैं, मेरी आत्मा के बल की थाह पाने के लिए सृष्टि के दिग्गजों की प्रतिष्ठा लड़खड़ा रही है। अपना हृदय खाकर जलने वाले मेरे इस साधना के दीप पर परवाने साथियों की बाँहें मुझे मृत्यु रूप में ढूंढ़ निकालती हैं। और मेरे शत्रु कठिनाइयों का पहाड़ ढहा लाते हैं तो मैं इन्द्र का वज्र बन उनके मद को चूर कर देता हूँ क्योंकि मैं अपनी साधना से जीवन का एक भी दिन, शक्ति का एक भी अणु, द्रव्य का एक भी पैसा और हृदय का एक भी पवित्र भाव

छिपाकर नहीं रखता। तभी मैं बनता हूँ एक दृढ प्रतिज्ञित वीरव्रती और यही है मेरी साधना के स्वरूप की चरम सीमा।

समर्पण सीखने का एक ही आधार,
वहन (निभाना) करना मेरी साधना का सार।

यह अवतरण मेरी साधना का शिखर समान है। क्षत्रिय समाज की आज ही हालात और इस अवतरण में वर्णित क्षत्रिय युवक संघ की उदात्त भावना और उच्च आदर्श में कितना अन्तर है। समर्पण भाव मानव जीवन की, जगत की विचारधाराओं की पराकाष्ठा है, पर आज हमारे समाज में इसका नितान्त अभाव है। यदि क्षत्रिय समाज समर्पण भाव को अपनाये, व्यवहार में लाए तो पृथ्वी पर ही नहीं अन्य ग्रहों में भी क्षत्रिय की-क्षात्रधर्म की जय-जयकार हो जाए, इसमें कोई संदेह नहीं।

इस अवतरण का सुर संपूर्ण समर्पण भाव है। इस समर्पण के सामने विश्व नत-मस्तक हो जाए, उनके चरण स्पर्श करे। ऐसे अद्भुत, बेजोड़ उच्च आदर्श को पाठकों के समक्ष कैसे रखा जाए, समझ में नहीं आता। फिर भी छिछले पानी में छटपटाहट करते, प्रयास करके जैसा आवे वैसा कुछ छिपाये बिना टूटे-फूटे शब्दों में लिखने का प्रयत्न करूँगा। पू. तनसिंह जी ने एक गीत की पंक्ति में कहा है-

ईमान नहीं बेचा कर्तव्य की राहों में।
मैं डूब चुका पूरा दुखियों की आहों में।
खुद ही तो छला जाता औरों को नहीं छलता।।

मेरी साधना के स्वर्ण कलश समान अन्तिम अवतरण की चर्चा प्रारम्भ से शुरू करने की बजाए नीचे से करते हैं। ''मैं अपनी साधना से जीवन का एक भी दिन, शक्ति का एक भी अणु, द्रव्य का एक भी पैसा और हृदय का एक भी पवित्र भाव छिपाकर नहीं रखता।'' ऐसा कहना और बोलना जितना सरल है, उतना ही आचरण में उतारना मुश्किल है। अक्सर लोग ऐसा मानते हैं कि मैं तन, मन, धन से, सच्चे दिल से समाज सेवा करता हूँ, समाज का काम करता हूँ। इस बात में हकीकत क्या है, उसका अंदाजा कसौटी पर चढाए बिना नहीं पता चलता। असल में ऐसे बोलने वाले जब कसौटी में चढते हैं तो नकली मोती ही साबित होते हैं। ऐसा हम सभी को अनुभव होता ही रहता है।

जबकि मेरी साधना के लेखक स्व. आयुवानसिंह जी और साधना के जनक स्व. पू. तनसिंहजी जीवन प्रवृति के लिए, समाज के लिए संपूर्ण रूप से समर्पित थे। अपनी समग्रशक्ति को प्रवृति के लिए न्योछावर करने वाले महापुरुष ही समाज का श्रेय, हित कर सके। अर्थात् समाज के श्रेय, हित के लिए महापुरुषों की आवश्यकता रहती है।

महापुरुष कहाँ से लाएँ? कहीं से आयात हो सकते हैं क्या? महापुरुष बनने के आवश्यक गुण हैं प्रेम, सेवा, परोपकार, संवेदना, पीड़ा, पुरुषार्थ, त्याग, बलिदान और समर्पण भाव। भावी पीढ़ी को हम अभी जिस मार्ग पर जाने को प्रोत्साहित कर रहे हैं, वहाँ से पीछे मुड़ने की आवश्यकता नहीं है ऐसा कहना मूर्खता होगी। किन्तु जिस मार्ग पर चला रहे हैं, उस राह पर चढाने से पूर्व महापुरुष बनने के उपरोक्त कहे गये गुणों का सिंचन करें, संस्कारों से शृंगार करें तो संभव है कि समाज में थोड़े महापुरुषों का सृजन हो सके।

मेरा समय, शक्ति, धन, भाव समाज से, प्रवृति से छिपाऊँगा नहीं। मतलब मेरी समग्र शक्ति समाज-हित के लिये ही खर्च करूँगा। यह भाव समाज के बड़े भाग में जब विकास पा लेगा तब क्या होगा? सोचें। अभी तो हमारे समाज के हालात ऐसे भाव जगाने की बजाए उसकी उपेक्षा और अवगणना करने की है। इसीलिए तो हमारी भावी पीढ़ी को इन महामूल्य गुणों का अभ्यास द्वारा सिंचन करने की बात कही गई है। यह बात भी जल्दी से हमारे गले उतर जाए, ऐसा लगता नहीं। क्योंकि हम इन गुणों से काफी दूर हो गए हैं। इसीलिए तो किसी ने कहा है- 'भोग, विलास और वैभवी जीवन में सेवा, संयम भूले भड़। सत बिसर के बैठे शैतानी संगत में स्वार्थ की जम गई जड़।'

बस! स्वार्थ की, भोग की जड़ जम गई है। इसके अलावा अन्य कोई विचार, बात सोचने की हमारी तैयारी ही नहीं है। यह बात समाज की गिरावट दिखाने के लिए नहीं लेकिन समाज की वास्तविक स्थिति का दर्शन कराने का प्रयत्न है। उन्नत भविष्य के लिए समाज के अगुवा लोग, सूत्रधारों, नेताओं आदि सभी को साथ बैठकर समाज की वास्तविकता के बारे में चिंतन करके, जाति के अस्तित्व के लिए, भावी पीढी में सेवा, संयम, सदाचार, प्रेम परोपकार जैसे गुणों का सिंचन करके समाज को पतन के मार्ग से बचाने हेतु प्रचंड, भागीरथ प्रयास, पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। छोटे मुँह बड़ी बात हो गई हो तो विशाल और उदार दिल से क्षमा करने की विनती करता हूँ।

मेरी साधना अर्थात् श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति समाजलक्षी है, समाज सापेक्ष है। समाज उसकी उपेक्षा करे, उससे अलिप्त रहे तो महान आदर्शों और उत्तम हेतु को साकार करने का स्वप्न सिद्ध नहीं होगा। इसीलिए समाज को बारम्बार जागने, देखने और पहचानने की करबद्ध प्रार्थना करनी पड़ती है। समाज का यह दुर्भाग्य है कि हम प्रार्थना और याचना करने वालों को लात मारने की निष्ठुरता प्राप्त कर बैठे हैं।

जिस दिन क्षत्रिय समाज जाति के लिए, कौम के लिये संपूर्ण समर्पण भाव पनपायेगा उस दिन इस अवतरण के प्रारम्भ में वर्णित सभी सिद्धियाँ साकार रूप धारण कर लेगी। उन सिद्धियों की चर्चा करने से पूर्व एक बार सोचें कि क्या हमने कभी इन सिद्धियों की इच्छा की है, सपने संजाये हैं? थोड़े लोगों का भी उत्तर 'हाँ' में हो तो, यह भी समाज का सौभाग्य है।

मेरी साधना में क्षत्रिय के लिए जैसे व्यवहार की अपेक्षा और आशा रखी गई है, वह अगर फलीभूत हो तो क्या परिणाम आएँगे वही इस अवतरण में समझाया गया है–

1. अब मुझे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि मेरी भावनाओं की नदियों का प्रेम प्राप्त करने के लिए संसार के ज्ञान का सागर बेचैन हो रहा है।

2. मेरे साधनों के दैन्य से भीख माँगने के लिए शहंशाहों की राज्य लक्ष्मी भटक रही है।

3. मेरी निश्चयात्मक धारणाओं की अटूट श्रद्धा के समक्ष संसार के सभी तर्क मूक होकर आत्म-समर्पित हो रहे हैं।

4. मेरी आत्मा के बल की थाह पाने के लिए सृष्टि के दिग्गजों की प्रतिष्ठा लड़खड़ा रही है।

इन चार सिद्धियों का क्षत्रिय समाज किस तरह से मूल्यांकन कर रहा है, उसका अंदाज पाना मुश्किल है। कोई समाज के चिंतकों, बुद्धिजीवियों, विचारकों से इन सिद्धियों के सम्बन्ध में जान पाये तो समाज का मूल्यांकन करने का एक साधन हाथ लगे। पाठक अपने लिए स्वयं मूल्यांकन करें, यही उचित होगा।

दिल की बात :

अंत में दिल खोलकर बात कहनी है, वह कह दूँ। मेरी साधना के 111 अवतरण पढे। भूल गये। साधक क्षात्रधर्म के पालन के लिए कैसी-कैसी धारणाएँ और अपेक्षा क्षत्रिय समाज से रखता है उसकी विगत चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु उसका हल्का-सा चित्र पेश करता हूँ।

हमारी जाति माता बीमार है। नहीं? एक महिला के कथनानुसार यह जाति माता आँसू बहा रही है, हिया-फाड़ रुदन कर रही है और पुकार कर रही है-'मुझे बचाओ'। हमको सुनाई देती है पुकार? नहीं सुनती क्योंकि हम सपूत नहीं रहे। मेरी साधना के साधक अवतरण 23 में कहते हैं- 'मैं सुनता क्यों नहीं इस पुकार को!' वे तो दिन-हीन, लाचार जनों की पुकार न सुनने की बात कहते हैं। हमको तो अपनी जाति माता द्वारा हिया-फाड़ रुदन के साथ की गई पुकार भी नहीं सुनती। क्या करें? त्रुटियाँ, दोष छोड़कर, अकर्मण्यता और निराशावाद के भंवर से निकल कर क्षात्रत्व को प्रदीप्त करने, क्षात्रधर्म का पालन करने के लिए मैदान में उतरना है। किसी ने कहा है-'निकम्मी (निठल्ली) आदत छोड़कर उतरो मैदान में, रखने को रजपूती वट।'

(शेष पृष्ठ 30 पर)

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज चौहान–इतिहास की धुंध पर एक प्रकाश : पृथ्वीराज पर ऐतिहासिक स्रोत, भाग–3

साहित्य तो फिर भी लेखक की कल्पनाशील व प्राय पूर्वाग्रह ग्रस्त लेखनी से बिंध जाता है। पर शिलालेखों का औपचारिक संसार थोड़ा अलग है, जिसमें खेल खेलना इतना सरल नहीं। नपे तुले सन्दर्भ क्षेत्र होने से शिलालेखों की कसावट भरी लेखनी में घुसाए झूठ आसानी से पकड़े जाते हैं और अधिकाधिक हस्तक्षेप होने से झूठ का खंडन प्रत्युत्तर–रूपी शिलालेखों व ग्रंथों से दिया जाता रहा है। अतएव शिलालेखों पर इतिहासकारों का विश्वास सबसे अधिक रहा है। यहीं आकर रासो की ऐतिह्य प्रासंगिकता का लबादा ओझल हो जाता है। पृथ्वीराज के जीवन सम्बन्धी अनगिनत तथ्य व घटनाएँ रासो में न केवल गलत है बल्कि अन्य अभिलेखों से मेल भी नहीं खाते। उदाहरण–रासो कथन कि अन्हिलवाड़ के राजा कर्ण पृथ्वीराज के लिए गोरी के विरुद्ध लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए[1]।

तथ्य– पृथ्वीराज के शासनकाल में अन्हिलवाड़ यानी पाटन सोलंकी राजा भीमदेव द्वितीय के अधीन था। मध्ययुग में अन्हिलवाड़ के कर्ण नामक केवल दो शासक हुए। एक 11वीं सदी में पृथ्वीराज से 5 पीढ़ियों पूर्व विग्रहराज चौहान तृतीय के समकालीन थे। दूसरे कर्ण वाघेल राजा थे जो पृथ्वीराज के 100 वर्ष बाद अलाउद्दीन खिलजी द्वारा हराए गए।[2] रासो के उतावले भाटों ने इन्हीं में से किसी कर्ण को कालचक्र तोड़ 12वीं सदी में आकर पृथ्वीराज के लिए लड़ने पर विवश कर दिया। चुटकियाँ लेना छोड़ गम्भीर बात करें तो रासो के ऐसे छंद स्पष्टत: 13वीं सदी के बाद ही लिखे गए हैं। रासो में मिले ऐसे अन्य प्रकरण दर्शाते हैं कि इसके लेखकों ने समय–समय पर इस्लामी आक्रमणकारियों से टक्कर लेते अलग–अलग क्षत्रिय सितारों को पृथ्वीराज की आकाशगंगा में सामंत रूप में कतारबद्ध कर दिया है।

इतिहास की कसौटी पर रासो के समर्थन और विरोध में दिए तर्कों के मूल्यांकन से हमें इस ग्रन्थ के जीवन चक्र का मोटा अनुमान मिल जाता है।

रासो का जन्म 15वीं सदी के मध्य में हुआ जो कि श्री दशरथ शर्मा के मत से निकट है[3]। 15वीं सदी में ही पृथ्वीराज प्रबंध की रचना है। रासो और पृथ्वीराज प्रबंध का उद्‌गम एक ही कालखण्ड से प्रतिलक्षित होना उनमें मिली कुछ समानताओं का कारण है। इस समय रासो मौखिक व अस्थिर था। फिर 16वीं सदी के मध्य तक इसकी लिखित सामग्री का आरम्भिक विकास हुआ और इसका कथानक भी एक सीमा तक स्थिर हो गया। 16वीं सदी के अन्त व 17वीं सदी के आरम्भ में रासो का मुख्यधारा में संक्रमण हुआ। इसी कालखंड में रासो के अनेकों लिखित संस्करण विकसित होने लगे। आगे 18वीं सदी के आरम्भ तक विविध कारणों से रासो में और भी परिवर्तन, संस्करण आदि देखे गए।

लेख की सीमा को ध्यान में रख यहाँ केवल एक उदाहरण लेंगे। आगे विषय–प्रवाह में रासो के मूल्यांकन के लिए और उदाहरण आएँगे।

''द्वितीय खंड: वंशोत्पत्ति–द्रव्यलाभ–राज्याभिषे''

उद्धरण :

1. पृथ्वीराज रासो लघु संस्करण, अध्याय 18, छंद 14
2. चालुक्याज ऑफ गुजरात– अशोक कुमार, मजूमदार, पृ. 188
3. रासो की घटनाओं का ऐतिहासिक आधार– श्री दशरथ शर्मा

अनगपाल पुछहित नृपति, कहहु भट्ट धरि ध्यान।
किहि सम्वत मेवार पति, बंधि लियो सुरतान।।
सोरहि से कटि गहित, विक्रम साक अतीत।
ढिल्ली धर मेवार पति, लेड़ षग्ग पर जीति।।

स्रोत– पृथ्वीराज रासो लघु संस्करण, अध्याय-2 के अन्तिम छंद

संदर्भ– तोमर राजा अनंगपाल के संन्यास का दृश्य

भावार्थ- प्रस्थान से पूर्व राजा अनंगपाल ने चंदबरदाई से पूछा कि मेवाड़पति कब सुल्तान को हराकर बाँध लेंगे।

कवि ने भविष्य का वर्ष लक्षित करते उत्तर दिया कि कब मेवाड़पति खड्ग के बल पर सुल्तान से दिल्ली जीत लेंगे।

रासो के विक्रम संवत् के विवादास्पद गणित में पड़े बिना हमारे प्रयोजन के लिए इतना जानना पर्याप्त है कि ये सब 16वीं सदी ईस्वी के पूर्वार्ध में होने की भविष्यवाणी की गयी है।

यहाँ दो तथ्य उभर कर आते हैं :

1. दिल्ली पर राजपूत वर्चस्व– ये छंद भविष्यवाणी करते हैं कि राजपूत दिल्ली जीत लेंगे। ऐतिहासिक घटनाक्रम ये है कि 1520-30 ईस्वी के दशक में मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (सांगा), चंदेरी के मेदिनी राय पुरबियाव, रायसेन के शिलादित्य तोमर का राजपूत गठबंधन दिल्ली सल्तनत को समूल उखाड़ने के निकट था।

2. मेवाड़ उदय– उत्तर भारत के सारे क्षत्रियों में कवि ने राजपूतों की इस दिल्ली विजय का नेतृत्व मेवाड़ को दिया। तथ्य यह है कि पृथ्वीराज के जीवनकाल के 50 वर्ष बाद तक मेवाड़ का स्वतंत्र राज्य के रूप में पुनरोदय नहीं हुआ था। उसके बाद भी मेवाड़ की शक्ति को तुर्कों के केन्द्र यानी दिल्ली-आगरा के निकट पहुँचने तक 250 वर्ष और लग गए (1520 ई.)। आठवीं सदी में बप्पा रावल के अरबों को खदेड़ने के बाद मेवाड़ी सूर्य फिर अपने शीर्ष पर 16वीं सदी के आरम्भ में ही आया। तब महाराणा सांगा ने तीनों तुर्क सल्तनतों को परास्त कर उत्तर में अपनी सीमा को आगरा व बयाना के बीच पीलाखल नामक स्थान तक धकेल दिया[1]। तो पृथ्वीराज के दिल्ली राज्याभिषेक पर चंदबरदाई को 16वीं सदी के ये ध्रुव सत्य किसी तप में लीन होते समय दिख गए या फिर से उन्होंने कालचक्र की बांह मरोड़ कर अपना काम निकाल लिया। यह तो हम नहीं जानते पर 16वीं और 17वीं सदी में अनेकों ग्रन्थ चौहान और मेवाड़ इतिहास का ऐसा मेल करते देखे गए हैं।

तो चंदबरदाई का क्या?

इन्हें रासो का निर्माता माना जाता है। ग्रन्थ में ये पृथ्वीराज के घनिष्ठ मित्र भी दिखाए गए हैं। कविवर केवल पृथ्वीराज का महिमामंडन ही नहीं करते, बल्कि उनकी छाया बने पूरे कथाप्रवाह में स्वयं को भी अमर कर गए। जिन भाटों ने बाद में रासो का और उद्धार किया उन्होंने चंद का जन्म व मृत्यु पृथ्वीराज के साथ एक ही समय, स्थान पर हुई बतायी। पृथ्वीराज को दिव्यता देता रासो कहता है कि ढूंढा नामक एक दैत्य की आँखों से पृथ्वीराज का जन्म हुआ और चंदबरदाई ने उपयुक्त रूप से ढूँढा की जिह्वा से जन्म लिया।

ऐसे में इतिहासकारों के लिए चंद को इतिहास में ढूंढना आवश्यक था। पर पृथ्वीराज के 400 वर्ष बाद तक पृथ्वीराज-प्रबंध को छोड़ किसी ग्रन्थ ने पृथ्वीराज की चंद नामक ऐसी किसी छाया का नाम नहीं लिया। तुलना में पृथ्वीराज के मंत्री कदम्बवास का अधिक उल्लेख मिला है।

पर चंद की और आलोचना से पहले ये बताना आवश्यक है कि रासो का लघुतम (सबसे पुराना) संस्करण चंद का पृथ्वीराज के संग डाल-डाल, पात-पात सा चित्रण नहीं करता। ये जोड़तोड़ बड़े संस्करणों में ही पाए जाते हैं।

कालातीत रचनाएँ अपने रचयिता को भी अमर कर देती है, ये कोई विचित्र बात नहीं। रासो के कवि ने ये काव्य लिखते हुए पृथ्वीराज के गौरव में अपना गौरव ढूँढने

(शेष पृष्ठ 30 पर)

उद्धरण :

1. महाराणा सांगा द हिन्दूपत-दीवान हरबिलास सारदा, पृ. 93, एनल्स एण्ड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान, खंड-1, पृष्ठ 83

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

भगवत्कृपा से रक्षा :

कभी-कभी अप्रत्याशित रूप से संकट का क्षण आ पहुँचता है और तब प्राय: उसका सामना करने के लिए तैयारी का कोई मौका नहीं रहता। सहसा आए हुए संकट का सामना करने के लिए एक सबल मन और उत्कृष्ट प्रत्युत्पन्न बुद्धि की जरूरत पड़ती है। इन क्षमताओं की प्राप्ति आसान नहीं है। अप्रत्याशित परिस्थितियों का कैसे सामना किया जाए? क्या कोई व्यक्ति पूर्णतया निर्भय हो सकता है? इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द के भ्रमण के दिनों की एक उल्लेखनीय घटना उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है –

'उन दिनों मैं हिमालय-अंचल के विभिन्न घरों में जाकर भिक्षाटन किया करता था। अधिकांश समय मैं ध्यान किया करता था। भिक्षाप्राप्त भोजन अति सामान्य कोटि का रहता और वह मेरी भूख शान्त कर पाने में अपर्याप्त था। एक दिन मैंने सोचा कि मेरा जीवन ही व्यर्थ है। उस पहाड़ी क्षेत्र के लोग बहुत गरीब थे। वे अपने परिवार तथा बाल-बच्चों का ही भरण-पोषण नहीं कर पाते थे, तो भी अपने भोजन का एक अंश वे लोग मेरे लिए बचाकर रखने का प्रयास करते थे। मुझे लगा कि इस तरह का जीवन जीने योग्य नहीं है। मैंने भिक्षाटन के लिए बाहर जाना छोड़ दिया। दो दिनों तक मैं भूखा रहा। प्यास लगने पर मैं झरने से जल पी लेता था। एक दिन मैं घने वन में जाकर एक वृक्ष के नीचे ध्यान में बैठ गया। आँखें खोलने पर मैंने अपने सामने एक बड़ा-सा बाघ देखा। उसने अपनी भयंकर आँखों से मेरी ओर देखा। मैंने सोचा कि आखिरकार अब मुझे शान्ति की प्राप्ति हो जाएगी। बाघ को भी शिकार की जरूरत है। उसकी भूख मिटाकर मेरा भी जीवन सार्थक हो जाएगा। मैं आँखें बन्द करके बाघ के अपने ऊपर झपटने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ मिनट बीत गए, पर बाघ ने मेरे ऊपर आक्रमण नहीं किया। मैंने आँखें खोलीं और चारों ओर देखने लगा। बाघ जंगल की ओर वापस चला जा रहा था। मैं चकित रह गया। मैं समझ गया कि ईश्वर मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे बोध हुआ कि अभी मुझे कुछ कार्य पूरा करना है और उसके पहले मुझे इस संसार से छुटकारा नहीं मिल सकता।'

इस घटना में खतरे का कोई पूर्वाभास नहीं था। ध्यान के बाद जब स्वामीजी ने आँखें खोलीं, तो उन्होंने एक भयंकर बाघ को खड़े होकर अपनी ओर घूरते हुए देखा। स्वामीजी भयभीत नहीं हुए थे। उस बाघ को अपना शरीर भोजन के रूप में देने को तत्पर थे। बाघ द्वारा खाए जाने के लिए तैयार होकर वे ध्यान में बैठ गए। उन्होंने किसी दैवी मदद की भी अपेक्षा नहीं की। परन्तु बाघ स्वयं ही लौट गया। कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनाओं का भी सामना होता है, जिनमें वे शक्तियाँ क्रियाशील प्रतीत होती हैं, जो प्राकृतिक नियमों के परे हैं। ईश्वर तथा अलौकिक घटनाओं में विश्वास न करने वाले युक्तिवादी ऐसी घटनाओं को निरर्थक संयोग मात्र मान सकते हैं, परन्तु अनुभवसिद्ध लोग तथा भक्तगण उनमें ईश्वर की अदृश्य शक्ति का हाथ देखते हैं।

स्वामीजी ने कहा, 'मैं समझ गया कि ईश्वर मेरी रक्षा कर रहे हैं।' भक्तों को अनुभव होता है कि भगवान ही उनकी रक्षा करते हैं। भगवान के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि भगवान ने किसी व्यक्ति को विपत्ति में डाल दिया है, परन्तु विश्वासी लोग उसमें भी भगवान का आध्यात्मिक उद्देश्य देखते हैं।

ऐसी अनूठी घटनाएँ न केवल सन्तों या महापुरुषों के जीवन में घटती हैं, अपितु सभी युगों के सभी देशों के विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के साधारण लोगों के जीवन में भी ऐसी घटनाएँ देखने को मिलती हैं।

भालू से सामना :

भारत-चीन सीमा-विवाद के दौरान सैन्यबल के एक जवान ने अपने एक अनुभव का वर्णन किया था। एक शाम वह अकेले ही हिमालय-क्षेत्र में भ्रमण करने गया था। लगभग 4 किलोमीटर चलने के बाद उसने विपरीत दिशा से आते हुए एक सफेद भालू को देखा। भय के कारण उस

जवान के होश उड़ गये। वह जानता था कि ये बर्फीली जगह के भालू अपने रास्ते में आने वाले किसी भी व्यक्ति के ऊपर आक्रमण करके उसकी जान ले लेते हैं। साथ में पिस्तौल न लाने का उसे पछतावा होने लगा। उसने सोचा, 'अब मेरा अन्त आ पहुँचा है। घर और स्वजनों से दूर, इस बीहड़ में एक भालू के हाथों मरना ही मेरे भाग्य में बदा था।' उसने आगे बताया, 'घर के सभी लोगों के चित्र और अपने आराध्य हनुमान जी की मूर्ति मेरी आँखों के सामने घूमने लगी। मैं स्थिर होकर भालू की ओर ताकता हुआ खड़ा रहा। मुझसे करीब 10 या 15 फीट की दूरी तक आए हुए उस भालू ने सहसा रुककर कुछ क्षणों तक मेरी ओर देखा और फिर चुपचाप लौट गया। भालू के लौटने का कोई स्पष्ट कारण नहीं था। मैं इस विश्वास के साथ वापस आया कि ईश्वर ने ही मेरी रक्षा की है। शिविर के बाकी लोग भी मेरे साथ हुई इस घटना को सुनकर आश्चर्यचकित रह गए।

दस दिनों बाद दक्षिण भारत से मुझे अपने पिता का पत्र मिला, जिसमें लिखा था, ''हनुमान जी मेरे स्वप्न में प्रकट होकर बोले, 'मैंने तुम्हारे पुत्र को संकट से बचा लिया है।' तत्काल पत्र लिखकर मुझे अपनी कुशलता सूचित करो।''

सन्तों, साधारण लोगों तथा भक्तों के जीवन में होने वाले अनुभवों से यह सिद्ध है कि सर्व-शक्तिमान परमात्मा से सहायता माँगने पर कठिनाइयाँ और संकटों से छुटकारा पाना सम्भव है।

श्रद्धा और भक्ति की सहायता से सभी समस्याओं का हल पाना सम्भव है। इसके लिए अध्यवसाय, सत्संग तथा अभ्यास की जरूरत होती है।

अभ्यास से भय का नाश करो :

धैर्य और अध्यवसाय के द्वारा हम किसी भी शारीरिक या मानसिक क्रिया को अपनी आदत तथा स्वभाव का एक हिस्सा बना सकते हैं।

निम्नलिखित उदाहरण दर्शाते हैं कि किस प्रकार अभ्यास तथा अध्यवसाय के द्वारा आदतें बनती हैं।

स्नान करने की आदत डालकर मनुष्य स्वच्छ रहता है।
दान की आदत डालकर मनुष्य उदार होता है।
ध्यान के अभ्यास से मनुष्य प्रबुद्ध हो जाता है।
क्षमा की आदत डालकर मनुष्य दयालु होता है।
हमेशा चिन्ता करते रहने से मनुष्य हताश होता है।
आत्मविश्वास विकसित करके मनुष्य सफलता पाता है।
निरंतर भयभीत रहने से मनुष्य कायर बन जाता है।
सहानुभूति के अभ्यास से मनुष्य उदार हो जाता है।

किसी व्यवहार को योजनाबद्ध रूप से कुछ काल तक जारी रखने से वह आदत में परिणत हो जाता है। किसी आदत को आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता। उसे छोड़ने से लगता है कि हमारी कोई चीज खो गयी है। किसी आदत में बाधा पड़ने से पूरे दिन का कार्य बेकार हो सकता है। अच्छे चरित्र तथा सदाचार के विकास के लिए भली आदतें बुनियाद के समान हैं। मन में बारम्बार आने वाले विचार और भावनाएँ हमारे स्वभाव तथा चरित्र का निर्माण करती हैं। जैसे चिन्ता, प्रफुल्लता, क्रोध, शान्ति मन की वे दशाएँ हैं जो आदत डालने से पैदा होती हैं। निर्भयता भी एक ऐसी ही आदत है। हमारे स्वभाव का अंग बन चुकी यह आदत नियमित तथा व्यवस्थित अभ्यास का परिणाम है। यदि हम अटूट नियमितता के साथ अपने मन में निर्भयता एवं साहसपूर्ण विचारों का पोषण करें, तो क्रमश: हमारा भय लुप्त हो जाएगा और निर्भयता हमारे मन का एक स्थायी भाव हो जाएगा।

सोचो, एक बच्चा किस प्रकार वर्णमाला लिखने की कला सीखता है। वह प्रत्येक अक्षर के घुमावों का बारम्बार निरीक्षण करते हुए और निरंतर उसे लिखने का अभ्यास करते हुए प्रत्येक अक्षर को सीख जाता है। किसी आदत को डालने या दूर करने के इच्छुक व्यक्ति को भी बड़े धैर्यपूर्वक अग्रसर होना होगा और धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक प्रगति करनी होगी। धैर्य खो देने पर हम किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते।

एक पंक्ति के बिन्दुओं को क्रम से जोड़कर हम वृत्तों, वर्गों, त्रिभुजों, आयतों तथा षड्भुजों के अगणित रूप बना सकते हैं। जब हम छोटे-छोटे कार्य भी एकाग्रता तथा व्यवस्थित रूप से करते हैं, तो हमारे चरित्र को एक आकार मिल जाता है। **(क्रमशः)**

गतांक से आगे

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

राजा गोपालदास ने अपने राज्य को पैतृक क्षेत्र तिमनगढ़, मासलपुर, सरमथुरा, खंडार, जीरोता (सपोटरा) तथा आज के चंबल पार सबलगढ़ और विजयपुर तक भी विस्तारित कर लिया और अपनी राजधानी नए बसाए वैंकुठपुर (बहादुरपुर) स्थानान्तरित कर ली, जो उंटगिर के मुकाबले अधिक सुविधाजनक स्थान पर थी। किन्तु बयाना को नहीं ले पाए, यह प्रश्न सदा से अनुत्तरित ही है कि अकबर ने उन्हें बयाना नहीं दिया या इन्होंने उसे नहीं लिया। अकबर ने राजा गोपालदास को माही मिरातिब सम्मान से सम्मानित किया। (यहाँ पर थोड़ी-सी जानकारी माही मिरातिब के बारे में देना भी समीचीन रहेगा। शाब्दिक अर्थों में माही फारसी भाषा में मछली को कहते हैं, कहीं कहीं पर माही शब्द का उल्लेख ईरान में रेगिस्तान में पाए जाने वाले एक सरीसृप को भी रेत की मछली के रूप में उल्लेख किया गया है। फारसी में मरातिब शब्द उच्च अधिकार प्राप्त व्यक्ति/अधिकारी/मनसबदार के संदर्भ में उपयोग लिया जाता था, वहीं अरबी में कहीं कहीं माही शब्द का उपयोग चंद्रमा के लिए भी किया गया है। ईरान के शाह खुसरो परवेज के अपने राज्याभिषेक के समय चंद्रमा मीन राशि में था, जिसे वह बहुत शुभ मानता था। अपने राज्याभिषेक की वर्षगांठ के अवसर पर युद्ध आदि में विशेष उपलब्धि हासिल करने वाले अधिकारियों को सम्मानित तथा प्रोत्साहित करने के लिए माही मरातिब उपाधि देने की परम्परा उसने प्रारम्भ की, जिसमें एक ध्वज दंड पर मछली के मुँह की आकृति जरदोजी अथवा धातु में बनी होती थी तथा दंड के ऊपर चांद बना होता था। इसको उपाधि प्राप्त व्यक्ति के आगे आगे घोड़े पर एक सवार लेकर चलता था। यही परम्परा हिन्दुस्तान में अकबर ने मनसब के साथ-साथ अपने दरबारियों के लिए शुरू की)। राजा गोपाल दास ने वर्तमान राजमहल को आज का स्वरूप देना प्रारम्भ किया, साथ ही राजमहल के सामने करौली शहर की नींव के प्रथम निर्माण आराध्यदेव भगवान कल्याण राय जी के मंदिर को वर्तमान स्वरूप में निर्माण कराया।

गोपाल दास को अकबर द्वारा दिए गए उत्तरदायित्व निभाने के लिए अधिकांशतया क्षेत्र से बाहर रहने के कारण प्रपितामह राजा चंद्रसेन के सामने ही द्वारिका दास राजकाज संभाल रहे थे किन्तु राजा गोपाल दास की 1590 में अजमेर में मृत्यु के बाद में विधिवत राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने उंटगिर के स्थान पर पिता की ही तरह बैकुंठपुर को ही राजधानी रखा तथा ऊंटगिर के किले की दुर्गम पहुँच का लाभ उठाने हेतु सैनिक असलहा और खजाना वहाँ रखना शुरू किया। करौली और तिमनगढ़ में आना-जाना इनका पूर्ववर्ती राजाओं से अधिक रहा। इनके छोटे भाई मुकुट राव को झिरी सरमथुरा की जागीर, राव की पदवी के साथ दी गई। राजा द्वारिका दास ईसवी सन् 1597 में शाहजादा मुराद के साथ दक्षिण में निजाम शाह के खिलाफ युद्ध में गए जहाँ पर युद्ध के दौरान गंभीर घाव लगने से वहीं उनकी और ओरछा के राजा रामचन्द्र की मृत्यु हुई।

राजा द्वारिकादास के बाद उनके दूसरे पुत्र मुकुंद उनके बाद गद्दी पर बैठे। अन्य पुत्रों में हरिदास के वंशज हरनगर और उनकी 16 अन्य कोटडियां आज भी हैं जिनके हरिदास के जादौन कहा जाता है। एक अन्य पुत्र सलेदी के वंशज करौली के सपोटरा में बाजना गाँव में है। (राजा द्वारकादास के सबसे बड़े पुत्र प्रताप शाही की पिता के सामने मृत्यु हो गई थी)।

इनके पुत्रों में सबसे बड़े जगम्मन थे, दूसरे पुत्र छत्रमन हुए जो जगम्मन के बाद राजा बने। राजा मुकुंद तथा उनके भाई देवमन और मदनमन के वंशजों में भरतून, खिदरपुर, हरिसिंह पुरा, कायम पुरा, बुद्धपुरा, बेरुंडा, नारोली, फतेहपुर व सेमरदा, खोह, सिमर तथा धूलवास हैं। मुकुंद के जादौन का एक ठिकाना भावड़, जयपुर स्टेट में

गंगापुर सिटी सवाई माधोपुर रोड पर है। शाहजहाँ के दक्षिण अभियान में राजा मुकुंद भी साथ थे, इनके अलावा उस अभियान में राजा द्वारिका दास कच्छावा, जुझारसिंह बुंदेला, रिजवान खान, इकराम फतेहपुरी, रामपुरा का राव दूदा चंद्रावत तथा आमेर के राजा भगवान दास का पोता शत्रुशाल कच्छावा भी साथ थे। यह युद्ध बुरहानपुर के पास हुआ जिसमें इमाम कुली, रहमानुल्लाह, शत्रुशाल कच्छवा, बलभद्र, राजा गिरधर राठौर और करमसी (राव चंद्रसेन जोधपुर का पोता) खेत रहे। राव दूदा युद्धक्षेत्र से पलायन कर गया। ऐसी विकट परिस्थिति में भी मुकुंद शाहजहाँ के साथ डटे रहे और अन्त में विजयी हुए। (वीर विनोद) राजा मुकुंद की मृत्यु के बाद जगम्मन 1605 में गद्दी पर बैठे। इनके राज में भाइयों के झगड़ों ने इन्हें चैन नहीं लेने दिया। झिरी सरमथुरा के मुकुटावत प्राय: ही झगड़े पर उतारू रहते, जिसे एकबारगी जगम्मन ने सफलतापूर्वक दबा दिया। इनके वंशज जगम्मन के जादौन कहे जाते हैं जो मिझोरा गाँव में हैं तथा एक घर अड्डा गाँव में है। शाहजहाँ द्वारा राजा जगम्मन को पाँच सौ जात और चार सौ सवार का मनसब प्राप्त था (शाहजहाँ नामा)। जहाँगीर द्वारा एक बार इनसे नाराज होकर कुछ जागीर जब्त करने का भी उल्लेख आता है लेकिन करौली की बहियों में ऐसा उल्लेख नहीं पाया गया। इनके पुत्र अमरमान थे जिनके वंशजों का मुख्य ठिकाना अमरगढ़ है और ये चंद के जादौन कहे जाते हैं, इनकी बारह कोटडियाँ हैं, जो सपोटरा क्षेत्र में हैं।

(क्रमश:)

उठो क्षत्रिय

– दीपसिंह रणधा, बाड़मेर

उठो क्षत्रियों सुस्ती छोड़ो, संघ ने दी आवाज है।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

पथ है हमारा शूलमय, बाधाएँ सीना तान खड़ी।
अपनी तनुजा डगमग करती, सागर के मंझधार पड़ी।
लहरों से मत डरो बन्धुओं, जाना सिन्धु पार है।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

निर्भय होकर कह दो मौत से, हमें अभी नहीं मरना है।
उस दिव्य पुरुष के अरमानों को, हमें ही पूरा करना है।
जंगल मंगल क्षात्र धर्म की, करनी जय जयकार है।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

परम्परा गिर कर उठने की, युगों से चलती आयी है।
पूर्वजों से यही तो हमने, अमूल्य थाती पायी है।
कष्ट सहन कर कर्म पथ पर, चलना बारम्बार है।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

प्यारे दुश्मन नित्य आयेंगे, हमें पकड़ने जालों में।
नहीं बहकाना हमें कभी भी, उन छलकाते प्यालों में।
इस विष वृक्ष का विवेक से, करना हमको संहार है।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

निज नीड़ के निर्माता हम, नीर क्षीर के ज्ञाता हैं।
कर्तव्य राह पर मिटने वाले, दुर्गा के हम भ्राता हैं।
ध्रुव प्रहलाद की तन्मयता हम, कल्ला के अवतार हैं।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

वीर प्रसविनी वसुन्धरा यह बलिदानों की खान है।
सतियों की यह प्यारी जननी, राजपूत की शान है।
सदा सुहागिन रखेंगे हम, इसके पहरेदार हैं।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

उजड़ी हुई इस माँग में फिर से, वही सिन्दूर सजाना है।
इस आँगन में एक बार फिर, चंडी माँ को नचाना है।
धार मिटी तो क्या हुआ आखिर, रजपूती तलवार है।
परम पताका केसरिया निज, जीवन का आधार है।।

विचार-सरिता

(नवषष्टिः लहरी)

– विचारक

विचारवानों की दृष्टि में जीवन की परिभाषा यही की गई है कि जिसके जीवन में सदैव आनन्द हर्ष और प्रसन्नता छाई रहती हो तथा जिसके जीवन में कभी भी राग या द्वेष की तरंगें उठती ही न हों तथा जो शान्त महासागरवत अपनी महिमा में मस्त रहता हो, ऐसा जीवन जीने वाला ज्ञानी महापुरुष जीवनमुक्त की श्रेणी में आता है। ज्ञान हो जाने के बाद उसके अन्तःकरण में किसी प्रकार की कोई कामना न रहने से सर्व दृश्य-प्रपञ्च का बोध हो जाता है और अपने में किसी प्रकार का कर्तापन का भाव रहता ही नहीं है। फिर भी शरीरादि से जो क्रिया होती है वह शेष रहे प्रारब्ध कर्म के बल से होती है। जिस प्रकार पीपल का सूखा पत्ता हवा के प्रभाव से इधर-उधर भ्रमण करता रहता है, ठीक इसी प्रकार जीवनमुक्त ज्ञानी की सब क्रिया अहंकार रहित होती है। कर्तापन के अभिमान से रहित होने के कारण ज्ञानी करते हुए भी कुछ नहीं करता है। प्रारब्ध शेष के कारण अन्यों को ज्ञानी क्रिया करता हुआ सा दीखता है।

जिस प्रकार दांतरहित बुढ़ा व्यक्ति सदैव मुँह को चलाता रहता है पर खाता कुछ नहीं, उसी प्रकार ज्ञानीजन प्रारब्ध वेग के कारण क्रियाशील होते हुए भी उनका कर्तापन सिद्ध नहीं हो सकता। जिसमें कर्तापन नहीं उसका भोक्तापन भी सिद्ध नहीं हो सकता। सभी कर्मों को ज्ञानाग्नि से दग्ध कर देने के उपरान्त प्रारब्ध भी उस ज्ञानी के दग्ध तो हो चुके, परन्तु जिस प्रकार भुने हुए चने के बीज में उसका अंकुर तो नष्ट हो चुका जिससे वह भविष्य में विस्तार या पुनर्जीवन पाने की शक्ति खो चुका परन्तु उसका आकार विद्यमान रहने से उसकी क्रिया समाप्त नहीं होती, ठीक इसी प्रकार ज्ञानी के संचित और क्रियामाण तो ज्ञान से पूर्णतः नष्ट हो चुके किन्तु प्रारब्ध का वेग अभी है इसलिए वह अज्ञानी की तरह भोजनादि की क्रिया करता रहता है।

प्रारब्ध के कारण कभी हाथी, घोड़े, रथ व हवाई जहाज पर चढ़कर घूमते हैं। सुन्दर-सुन्दर बाग बगीचों को देखते हैं, फूलों की मालाओं को धरण किये हुए कभी उच्च आसन पर शोभायमान होते हैं तो कभी प्रारब्धवशात पैरों में पहनने के लिए खड़ाऊ भी नहीं है। कभी निर्जन वन में पशु-पक्षियों के साथ देखे जाते हैं तो कभी कुंभ जैसे मेलों में जनसमुदाय से घिरे हुए देखे जा सकते हैं। ज्ञानी का शरीर प्रारब्ध से चलता है। जिन कर्मों का फल भोगना मुकर हो चुका है अर्थात् तय हो गया वही विधाता के द्वारा लिखा हुआ लेख है अर्थात् ईश्वर द्वारा इस शरीर का मिलना तथा इस शरीर द्वारा सुख-दुःख के रूप में फल भोगना, इसी का नाम प्रारब्ध है। अतः ज्ञानी को किसी भी प्रकार का न हर्ष है न शोक है। प्रारब्ध शेष से वह कभी हाथी घोड़ों पर चढ़ता है कभी प्रारब्धवशात पुनः पीपल के सूखे पत्ते की भाँति अकेला ही नग्न पाँव घूमता है।

प्रारब्धानुसार कभी पहनने को अच्छे सुकोमल रेशमी वस्त्र, सोने के लिये गद्देदार सुख सेज, पलंग, पाटा आदि और खाने-पीने के लिये उत्तम-उत्तम भोजन व पेय पदार्थ मिल जाते हैं और कभी चना चबेना भी नहीं मिलता, भूखे ही सो जाना पड़ता है तथा पहाड़ों की कन्दरा और पत्थर की शिला आदि पर शयन करना पड़ता है। इतना सब कुछ होते हुए भी ज्ञानी को अनुकूलता में हर्ष नहीं और प्रतिकूलता में किसी प्रकार का शोक नहीं। ''सब कुछ प्रारब्धानुसार हो रहा है'' ऐसा मानकर वह ज्ञानी पुरुष तो अपने निजानंद में मस्त रहता है। गुरु महाराज सोमनाथजी महाराज ने एक फकीरी में लिखा है- फकीरी फिकर फाकै सो फकीर। अर्थात् जिसने फिकर का फाका करके फाक लिया वही असल में फकीर है। ऐसे अलमस्त फकीरों के लिए और भी कहा गया है सो इस प्रकार है –

वाह वाह रे मौज फकीरां दी।
फकीरी फकर मस्त हर फेर, जंगल दंगल एक समाना सदा ही निरभे शेर।
कबहुंक सूखा टूक चबीना, कभी माल ढिग ढेर।।
किसी काल मनोहर थालन में, रसदायक मिष्ट पदारथ हैं।
किसी रोज जला सूखा टुकड़ा, मिल जाये चबीना भोजन में।
आशक मस्त फकीर हुआ तब, क्या दिलगीर पणा मन में।।
कभी तो चाबे चना चबेना, कभी तो लपटां खीरां दी।
कभी तो ओढ़े साल दुशाला, कभी तो गुदड़ियाँ लीरां दी।।
ओढ़त शाल दुशालन को सुख, सोवत महल अटारिन में।
कभी चीर फटी तन पै गुदड़ी, नित लेटत जंगल वा बन में।।
कोई एक चन्दन पुष्पकर पूजें, वन्दन करत बहु बेर।
निंदा निरादर करे कोई निंदक, राग रती नहीं वैर।।
कोई पूजत फूलन मालन से, सब अंग सुगंध लगावत हैं।
कोई लोग निरादर कार करें, मग धूल उड़ावत हैं तन में।।
.........वाह वाह रे मौज फकीरां दी।।

ऐसे अलमस्त फकीरों के अन्त:करण में न कोई कामना है और न कोई पदार्थ विशेष की वासना ही है, वे तो अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए प्रारब्धाधीन क्रिया करते हैं। उनके इर्द-गिर्द रहने वाले पूजक और निन्दक अपने भावनानुसार जैसी क्रिया उचित समझते हैं उनके शरीर के माध्यम से करवा लेते हैं। कहीं हजारों लाखों लोग पूजा करते हैं, प्रणाम व स्तुति करते हैं तो कहीं कर्मकाण्ड में फंसे हुए लोग, इनको कुछ करते हुए नहीं देखते हैं, तब ऐसे महात्मा को इस लोक में भ्रष्ट मानकर धिक-धिक कहते हैं। अर्थात् वे अज्ञानी लोग उनको भ्रष्ट बताकर निन्दा करते हैं।

ज्ञान होने के उपरान्त ज्ञानी के तो किसी क्रियमाण कर्म का फल चिपकता नहीं तथा जब तक शरीर है तब तक शरीर, मन और वाणी द्वारा कर्म तो ज्ञानी से भी होगा। और कर्म का यह नियम है कि जैसा कर्म वैसा फल अर्थात् शुभ कर्म का शुभ-फल तथा अशुभ कर्म का अशुभ फल मिलता है। अत: शास्त्रकारों के अनुसार जो ज्ञानी पुरुष की पूजा, स्तुति, सेवादि करते हैं वे उस ज्ञानी पुरुष के क्रियमाण कर्मों के शुभ फल को ले लेते हैं और जो उनकी निन्दादि करते हैं वे उनके भूल से हुए पापकर्मों के फल को ले लेते हैं।

इस प्रकार ज्ञानोत्पत्ति के बाद होने वाले शुभ और अशुभ क्रियमाण कर्मों को अन्य लोग ही भोगते हैं, ज्ञानीजन नहीं। सुहृद, सेवक, पूजक पुण्यफल के भागी होते हैं और द्वेषी, निन्दकजन पाप कर्म को ग्रहण करते हैं। इसलिए ज्ञानी के क्रियमाण पुण्यकर्मों को सुहृद लेता है और द्वेषी पापकर्म ग्रहण कर लेते हैं। ज्ञानी पर शास्त्रों के किंकर लागू नहीं होते। शास्त्रों में वर्णित व्यवहारिक नियम हम अज्ञानियों के लिये हैं, ज्ञानी के लिए नहीं। ज्ञानी के देह का बिना नियम के व्यवहार होता है। कर्ता बुद्धि से ज्ञानी तो कुछ करता नहीं, जो प्रारब्धाधीन सहज होता है वह हो जाता है। उसमें ज्ञानी का कोई कर्तृत्वभाव होता ही नहीं। उसको तो कभी भ्रम या संदेह होता ही नहीं क्योंकि तत्व को भली प्रकार से निर्णय करके जान लिया है। ज्ञानी को वेद प्रमाण से अद्वैत-ब्रह्म का अनुभव जो हो चुका है अत: उसके कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता है। जितने भी कर्तव्य हैं वे सब भेद-बुद्धि से ही होते हैं और ज्ञानी के भेद-बुद्धि है नहीं अत: उसे कोई कर्तव्य बान्धता नहीं।

जीवनमुक्त महात्मा तो निरबन्धन स्थिति में जीता है। उसके लिए चारों दिशाओं में उसी की जागीरी है। पीपल के सूखेपात्त को हवा का झौंका कभी पूर्व में उड़ा ले जाता है तो कभी पश्चिम या अन्य दिशा में। ठीक इसी प्रकार उसके निरासक्त देह को प्रारब्ध रूपी वायु जिस ओर लेजावे वे महापुरुष उस ओर ही चल देते हैं। ऐसे ज्ञानवान महापुरुषों के चरणों में मेरा कोटिश: प्रणाम।

❑

जिस त्याग के बदले में प्रतिष्ठा, सम्मान, राजनैतिक अथवा सामाजिक लाभ अथवा किसी अन्य प्रकार के हित की आकांक्षा हो, वह त्याग के रूप में पाखण्ड है।

– पू. तनसिंहजी

गतांक से आगे

इतिहास के झरोखे में गोगा चौहान

– मातुसिंह मानपुरा

महमूद गजनवी से संघर्ष एवं सांसारिक देह का त्याग :– भारत के लगभग मध्य भाग में स्थित सोमनाथ के मंदिर को सन् 1024 ई. में लूटे जाने की घटना शौर्यशाली आर्यभूमि के माथे पर कलंक का टीका है जिसे धूमिल तो किया जा सकता है लेकिन मिटाया नहीं जा सकता। उस विदेशी लुटेरे ने मार्ग में आने वाले राज्यों से उनका अहित किये बिना सोमनाथ पर आक्रमण के लिये रास्ता माँगा। कहीं सहर्ष तो कहीं संघर्ष के बाद रास्ता मिलता गया और वह अपने मनसूबे में सफल रहा। होने वाले परिणाम के प्रति लापरवाही एवं भारतीय राज्यों में एकता व सामंजस्य-पूर्ण अभाव के कारण उस दुखद घटना ने मूर्तरूप लिया। सोमनाथ से लगभग 1200 कि.मी. दूर मरुभूमि के एक छोटे से राज्य ददरेवा के राणा गोगा चौहान को यह स्वीकार नहीं हुआ। इतिहास के पाठकों के मध्य एक यक्ष प्रश्न उठता रहा है कि क्या गोगा-चौहान महमूद गजनवी के समकालीन था? 'चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास' के पृष्ठ 57 पर लिखा है, '.....इस कर्मचन्द और जैतसी के निश्चित समय से गणना करने पर गोगाजी का समय विक्रम की 11वीं शताब्दी ही आता है, और वे महमूद गजनवी के सम-सामयिक ठहरते हैं।' गोगा और गजनवी का समकालीन तथा दोनों के मध्य संघर्ष होने सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध डॉ. दशरथ शर्मा का माना जाता है, '.....एक अन्य चौहान वंश,जो लोकदेवता गोगाजी एवं फतेहपुर के क्यामखानी वंश से सम्बन्धित होने के कारण उल्लेखनीय है, वह है ददरेवा (बीकानेर डिवीजन) के मंडलेश्वर। इनका परिचय हमें क्यामखां रासा एवं वि.सं. 1270 के एक शिलालेख से मिलता है। प्रथम से विदित होता है कि गोगा जेवर का ज्येष्ठ पुत्र था और उसने कुछ वर्षों तक शासन किया। उसका उत्तराधिकारी नानिग था जो सम्भवत: निसंतान परलोक सिधारा, तब सम्भवत: वहाँ का अधिकार गोगा के भाई बैरसी के पुत्र उदयराज को मिला।'

निम्न विद्वान गोगा चौहान और महमूद गजनवी के समकालीन होने तथा उनके मध्य संघर्ष को प्रमाणित करते हैं-कर्नल टॉड, डॉ. दशरथ शर्मा, कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी, गोगाजी की एक निशाणी के पृष्ठ 4-5 पर लिखित तथ्य, डॉ. सत्यकेतु विद्यांलकर की पुस्तक 'अग्रवाल जाति का इतिहास' पृष्ठ 261-63, पंजाबी लोकगीत, गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा, चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास तथा राजस्थान सहित मध्यभारत की लोककथाएँ।

सोमनाथ की घटना से व्यथित गोगा चौहान ने अपने सहयोगी सामंतों एवं पूर्वी क्षेत्र के मित्र राज्यों से लूटकर लौटते हुये महमूद पर आक्रमण करने के लिए निर्धारित समय पर केशरिया (अन्तिम युद्ध के लिए धारण किये हुए पीले रंग के वस्त्र) कर आने का निमंत्रण भेजा। सम्पर्क वाले सभी राज्यों ने सहर्ष स्वीकार कर साथ निभाने का वादा किया। सोमनाथ पर आक्रमण एवं धन-सम्पदा एकत्रित करने के पश्चात लौटते हुए महमूद के मन में भय पैदा होने के कारण वह सेना की निर्धारित गति से अधिक रास्ता तय करता हुआ गजनी की ओर तीव्र गति से लौटने लगा। यद्यपि जाते समय रास्ते में अपने जासूस एवं मार्ग तय करने वाले सैनिक छोड़े थे लेकिन परिस्थितिवश वह लौटने का मार्ग भूल गया था। भटकी हुई महमूद की सेना समय से पहले गोगा चौहान के राज्य सीमा से गुजरने लगी। गोगा अपनी सामरिक तैयारी के साथ तैयार था लेकिन समर्थित राज्यों की सेना के पहुँचने का निर्धारित समय नहीं हुआ था। 'मत चूकै चौहान' परम्परा के इस पूर्वज ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार भाई, पुत्र, भतीजों, चुनिंदा वीर सैनिकों व राज्य के सिपाहियों के साथ ददरेवा से 80 कि.मी. उत्तर-पश्चिम की तरफ बढकर

महमूद की सेना का मार्ग रोका। सेना के मुख्य भाग पर प्रहार करने के लिये अपने आपको रेगिस्तान में पशुओं के चरवाह बताया। उचित समय एवं परिस्थिति देखकर स्वाभिमानी राष्ट्र भक्त ने महमूद की सेना पर आक्रमण कर दिया। टिड्डीदल जैसी विशाल सेना के अग्रभाग पर मातृभूमि के रक्षकों ने प्रचण्ड प्रहार किया। महमूद की सेना मानसिक रूप से लड़ने को तैयार नहीं थी। मरुभूमि के योद्धा यवन सेना के मध्य भाग तक त्रिस्तरीय सुरक्षा चक्र के बीच महमूद पर आक्रमण करने के लिये पहुँच गये लेकिन महमूद के सुरक्षा चक्र को तोड़ा नहीं जा सका। मातृभूमि के रक्षकों को यवन सेना ने चारों तरफ से घेर लिया। भादरा (जिला-हनुमानगढ़) से 14 कि.मी. पश्चिम में वर्तमान गोगामेड़ी स्थान पर गोगा चौहान अपने 47 भाई-भजीतों तथा अन्य वीर सैनिकों सहित युद्ध मैदान में काम आया। अग्रभाग में ही युद्धरत यशस्वी पिता का वीर युवापुत्र कट गया लेकिन पीछे नहीं हटा। किसी वीररस के कवि ने ऐसे ही योद्धाओं के लिये कहा है-

बाप पड़्यो जिण ठौर हूँ, बेटा नह हटियाह।
पेच कसुम्बल पाग रा, सिर साथै कटियाह।।

क्षत्रिय मर्यादा रक्षक मातृभूमि के लिये स्वर्ग सिधारने वाले इन प्रहरियों की संख्या 47 से बढकर होना सम्भव है क्योंकि गोगा चौहान के पास सैनिकों की संख्या इस संख्या से कई गुणा अधिक थी। शक्तिसम्पन्न यवन सेना का आगे बढकर मार्ग रोकने वाले सेनापति के पास युद्ध से पलायनकर्ता सैनिक कम से कम होते हैं। युद्ध समाप्त होने के बाद घायल बैरसी ने भाई गोगा सहित सभी सैनिकों का अन्तिम संस्कार करने का आदेश दिया। यह तथ्य रावों (वंशानुगत बही लिखने वाले) की बही से प्रमाणित होता है कि उन्होंने गोगा के बाद बैरसी को राणा लिखा है क्योंकि 'राजा कभी मरता नहीं है' की परम्परा के अनुसार बही का लेख सही है। सभी योद्धाओं के अन्तिम संस्कार परम्परा के अनुसार एक स्थान (पास-पास) पर किये गये। वीर गोगा जी के अन्तिम संस्कार स्थल पर थड़े (चिन्हित करने हेतु पत्थर-मिट्टी आदि को एक स्थान पर एकत्रित करना) का निर्माण किया गया। घायल बैरसी ने भी युद्ध मैदान में ही जन्म-मरण धन्य किया। वीर गोगाजी चौहान द्वारा लड़े गये इस अन्तिम युद्ध के सम्बन्ध में 'चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास' में लिखा है-'गोगाजी एक अत्यन्त आत्माभिमानी वीर थे और आत्म बलिदान की भावनाओं से अनुप्राणित होकर इस बर्बर आक्रान्त के विरुद्ध मातृभूमि और धर्म की रक्षा हेतु विपुल पराक्रम से युद्ध करते हुये वे अपने पुत्रों, सम्बन्धियों और सैनिकों सहित वीरगति को प्राप्त हुये थे।' मरुभौम की परम्परागत देवली शैली में निर्मित मूर्ति से यह प्रमाणित होता है कि ददरेवा समाचार पहुँचने पर स्वर्ग सहगमन के लिए गोगाजी की एक रानी सती हुयी।

वीर गोगा चौहान के भाई बैरसी का पुत्र उदयराज ददरेवा का राणा बना। पूर्व निर्धारित समय पर मित्र राज्यों की सेना केशरिया कर ददरेवा पहुँची लेकिन तब तक सब कुछ बदल गया था। संवेदना व्यक्त कर (पानी देकर) मित्र राज्यों की सेनाएँ यशोगान करते हुये अपने राज्यों को लौट गयी लेकिन प्रतिवर्ष मित्र राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा केशरिया कर आने की परम्परा को कायम रखा गया। गोगाजी जुझार के रूप में प्रतिष्ठित हुये परिणामस्वरूप केशरिया कर आने वालों की संख्या बढती गयी, आज हजारों श्रद्धालु पीले (केशरिया जैसे) वस्त्र पहनकर गोगाजी को नमन करने ददरेवा एवं गोगामेड़ी आते हैं। कुछ समय बाद गोगामेड़ी में चबूतरे का निर्माण हुआ, फिर छोटी मेड़ी बनी। वर्तमान मेड़ी का निर्माण खेतसिंह कांधल ने करवाया था। समय-समय पर निर्माण द्वारा इसके स्वरूप एवं विस्तार में बदलाव आता गया। अन्तिम स्थल पर बने इस स्मृति स्थल को गोगामेड़ी एवं धुरमेड़ी कहा जाता है। जुझार के रूप में प्रतिष्ठित होने से पहले ददरेवा राजपरिवार द्वारा हवन-पूजा कर गढ के अग्रभाग के ईशान कोण में मेड़ी की स्थापना की गई। वर्तमान मेड़ी का निर्माण बीकानेर महाराजा कुँवर सिंह के समय ददरेवा ठा. हरिसिंह द्वारा करवाया गया। इसे शीश मेड़ी के नाम से जाना जाता है।

वंशजों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करना :- गोगाजी की 16वीं पीढ़ी में मोटेराय ददरेवा का राणा बना

दिल्ली के शासक फिरोजशाह तुगलक के समय हिसार के फौजदार सैय्यद नासिर ने ददरेवा पर आक्रमण किया। मोटेराय के तीन पुत्र शत्रुओं द्वारा पकड़ लिये गये, जिन्हें बहला-फुसला एवं दबाव में लेकर इस्लाम धर्म स्वीकार करने हेतु बाध्य कर दिया गया। कुछ लेखकों ने यह भी लिखा है कि सैय्यद नासिर परिवार द्वारा पुत्र की तरह प्यार दिया गया इसलिए इन बच्चों की सब शर्तें स्वीकार कर इस्लाम धर्म स्वीकार करवा लिया गया। 'क्यामखां रासा' में लिखा है -

ताके उपज्यौ करमचन्द, प्रकट भयो सब ठांव।
तुरक कर्‌यो पतिसाह जू, धर्‌यो क्यामखां नांव।। 120।।
मोटेराय के चार सुत, क्यामखांन भोपाल।
और जैनंदी सदरदी, हिन्दू रह्यो जगमाल।।121।।

बही भाटों की वंशावली के अनुसार मोटेराय के भोजराज नाम का पांचवां पुत्र भी था, उसने भी इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, ये सभी क्यामखांनी कहलाते हैं। 'क्याखानी कल और आज' के पृष्ठ 19 पर कुँ. सरवर खान ने लिखा है कि 'करमसिंह ने सन् 1383 ई. में इस्लाम धर्म स्वीकार किया था।' इस्लाम धर्म स्वीकार करने के उपरान्त भी क्यामखांनी समाज ने हिन्दू दर्शन एवं परम्पराओं को यथावत बनाये रखा। ये अपने आप को चौहान कहलाने में गर्व महसूस करते हैं। कुंवर एवं ठाकुर तथा रांगड़ शब्दों का मोह आज तक बना हुआ है। इनके वैवाहिक कार्यक्रम में ब्राह्मण एवं मोलवी दोनों आने की परम्परा रही है। हिन्दू देवी-देवताओं को, विशेषकर गोगाजी को तो इन्होंने कुल देवता जैसा दर्जा देकर माना है 'पीर' शब्द की उत्पत्ति से गोगाजी का सम्बन्ध का कारण यही समाज है। एक सर्वे के अनुसार स्वाभिमानी एवं स्वामिभक्त तथा संघर्ष प्रिय चौहानों की परम्परा पर चलने वाली इस जाति के सन् 1870 में बीकानेर की सेना में 600 पैदल सैनिकों में से 250 क्यामखांनी सैनिक थे।

ददरेवा में चौहान राज्य का सूर्योदय एवं सूर्यास्त :

घांघू के राणा अमरा (अमरपाल) के सहयोग से उसके पुत्र जेवर ने विक्रम की 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ददरेवा पर अधिकार किया था। लगभग 550 वर्षों तक ददरेवा पर चौहानों का आधिपत्य रहा। राणा जेवर (जीवराज) ने आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार कर नयी राजधानी को सुरक्षित किया। यह गाँव इससे पहले भी पूर्व एवं पश्चिम की शक्तियों के मध्य युद्ध मैदान रहा है। ददरेवा की ढाब (तालाब) के पास की समतल भूमि क्षेत्रीय लोगों के मध्य 'रण' के नाम से पहचानी जाती है। सम्भवत: पानी का स्थाई स्थान होने के कारण यह संघर्ष क्षेत्र रहा है। पानी पर अधिकार बनाये रखने हेतु भी संघर्ष होना सम्भव है। गुजरात क्षेत्र तक के पशुपालक यहाँ आने के प्रमाण हैं। राणा जेवर एवं उनके यशस्वी पुत्र राणा गोगा चौहान के बाद भी कई पीढियों तक चौहान राज्य रहा तथा सभी राणाओं ने अपनी क्षमता के अनुसार राज्य को सुदढ़ता प्रदान की। उस समय के बनाये हुये कुवे एवं कुण्ड आज तक विद्यमान हैं लेकिन अधिकतर पर कोई शिलालेख नहीं है। राणा गोपाल के पुत्र राणा जयन्तसी ने एक कुवे का निर्माण माघ सुदि 14 वि.सं. 1273 को सम्पन्न करवाया था। इस लेख को इटालियन साहित्यकार डॉ. तेसीतोरी ने सर्वप्रथम उजागर किया था। वर्तमान में यह मेड़ी में टूटा-फूटा उपलब्ध है। राणा मोटेराय के समय उसके पुत्रों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर 'क्यामखांनी' जाति की उत्पत्ति हुयी। वर्तमान में ढाब के पास समतल भूमि 'रणक्षेत्र' में क्यामखांनी समाज के प्रयास से स्मृति स्थल का निर्माण राज्य सरकार द्वारा किया गया है, यह कार्य 14 जून, 2004 को सम्पन्न किया गया। ददरेवा का अन्तिम चौहान शासक राणा देपाल का पुत्र राणा मानसिंह था। बीकानेर की सेना द्वारा आक्रमण करने पर सात माह तक 500 सैनिकों के साथ गढ में रहा। रसद की कमी के कारण गढ के द्वार खोल कर युद्ध किया। बीकानेर के राव लूणकरण के भाई राठौड़ घड़सी के हाथ से राणा मानसिंह मारा गया। वि.सं. 1566 (सन् 1509) में ददरेवा में चौहान राज्य का सूर्यास्त हो गया। बीकानेर महाराजा रायसिंह के अनुज, महाराणा प्रताप को ऐतिहासिक पत्र लिखने वाले महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ 'पीथल' के पुत्र सुद्रसैन को वि.सं. 1674 में 12 गाँव की जागीर के साथ ददरेवा मिला। जो सन् 1947 तक बीकानेर राठौड़ राज्य का भाग रहा। **(क्रमश:)**

कट्टरता और उदारता

– कृपाकांक्षी

कट्टरता और उदारता को हम एक दूसरे का विलोम मानते हैं। लेकिन क्या ये वास्तव में विलोम हैं या एक दूसरे के पूरक हैं या फिर इनका संदर्भ अलग-अलग है? इनमें से कौनसा भाव गलत है और कौनसा सही है? क्या दोनों ही गलत हैं या दोनों ही सही हैं? ऐसे अनेक प्रश्न हमारे सामने खड़े होते हैं। जो कट्टर है वह यह कहता है कि कट्टरता सही है और जो उदार है वह कहता है उदारता सही है लेकिन वास्तविकता क्या है? कट्टरता का सामान्य अर्थ प्राय: सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता से लिया जाता है। सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता गलत कैसे हो सकती है? ऐसे सिद्धान्त प्रिय लोगों के बल पर ही तो सिद्धान्त जीवित रहते हैं, जीवन मूल्यों का महत्त्व प्रतिपादित होता है। ऐसे में सिद्धान्तों के प्रति कट्टरता होनी ही चाहिये।

वहीं उदारता का सामान्य अर्थ हम नरमाई से लेते हैं, खुलेपन से लेते हैं, सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ता में कुछ ढिलाई के संबंध में लेते हैं। इस प्रकार का अर्थ करने पर तो हमें ये दोनों शब्द आपस में विलोम ही दिखाई देते हैं और हमारे यही समझ में आता है कि जो कट्टर होता है वह उदार नहीं होता या जो उदार होता है वह कट्टर नहीं होता। लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं है। जो कट्टर होता है वह भी उदार हो सकता है और जो उदार होता है वह भी कट्टर हो सकता है। आदर्श स्थिति तो यही है कि हर कट्टर को उदार होना चाहिए और हर उदार को कट्टर होना चाहिए। इन दोनों का समुचित व सम्यक संतुलन ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक विकास कर सकता है। तब हमारे सामने एक नया प्रश्न खड़ा होता है कि इन दोनों के बीच सम्यक संतुलन क्या है? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने से पूर्व हमें यह जानना चाहिए कि हमें कट्टर किसके प्रति होना है और उदार किसके प्रति होना है? इस प्रश्न के उत्तर में ही इन दोनों शब्दों का सुंदर समन्वय और सार्थक उपयोग छिपा हुआ है।

कट्टर व्यक्ति को स्वयं के प्रति होना चाहिए। जिन जीवन मूल्यों तथा सिद्धान्तों को वह आदर्श मानता है और उनकी पालना के लिए अपने स्वयं के लिए उसने जो विधि निषेध तय कर रखे हैं, उनकी पालना के लिए उसे स्वयं के प्रति कट्टर होना चाहिए। हर परिस्थिति में दृढ़ता-पूर्वक उन नियमों के लिए उसे स्वयं के प्रति कट्टर होना चाहिए। हर परिस्थिति में उसे दृढ़ता पूर्वक उन नियमों का स्वयं के जीवन में पालन करना चाहिए, यही कट्टरता का श्रेष्ठतम स्वरूप है और इसी रूप में कट्टरता एक गुण के रूप में वरेण्य है। यदि यहाँ वह उदार हो जाता है और स्वयं के लिए ढिलाई देकर छूट लेने लग जाता है तो उसका स्वयं का विकास रुकेगा ही नहीं बल्कि वह अवनति की ओर गतिशील होना प्रारम्भ हो जाएगा। यही हमारे लिए विचारणीय बात है कि हम इस विषय में कट्टर हैं या उदार हैं। जैसे श्री क्षत्रिय युवक संघ में हमें साधना के कुछ नियम बताये हैं, संघ की साधना के अनुकूल आहार, विहार, आचार, विचार के नियम बताये हैं। यदि मैं स्वयं के लिए उन नियमों का कट्टरतापूर्वक पालन करता हूँ तो वह कट्टरता मेरा गुण है और मुझे इसे बनाये ही नहीं रखना है बल्कि दृढ़ से दृढ़त्तर बनाते जाना है। लेकिन यदि मैं यहाँ उदार हो जाता हूँ, स्वयं को ढ़ील देना प्रारम्भ कर देता हूँ, अपने आपको किसी न किसी बहाने माफ करना शुरू कर देता हूँ तो मेरा अपने आपके प्रति इस प्रकार उदार होना मेरी साधना के लिए घातक होगा और यह मेरे विकास को अवरुद्ध ही नहीं करेगा बल्कि मुझे अवनति की ओर भी धकेल देगा। लेकिन क्या उदार होना सदैव अवगुण ही होता है?

हम तो सदैव सुनते और पढ़ते आये हैं कि उदार होना एक श्रेष्ठ गुण है। तो वास्तव में उदारता एक गुण ही है लेकिन उदार स्वयं के प्रति नहीं होना बल्कि अन्यों के प्रति होना है। लोकसंग्रह के तहत हम जिससे संपर्क कर रहे हैं,

जिसको साथ ले रहे हैं या साथ लेने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसके प्रति हमें उदार होना है। कोई हमें जानता नहीं है, हमारी साधना को जानता नहीं है, उसके तौर तरीकों को जानता नहीं है उसके साथ व्यवहार करते समय उदार होना है। हमारी उदारता ही उसे हमारे निकट आने को प्रेरित करेगी, उसे हमें समझने को प्रेरित करेगी, संघ को समझने को प्रेरित करेगी, साधना को समझने को प्रेरित करेगी और इसी उदारता के बल पर हम लोकसंग्रह कर पायेंगे। एक बार तो कोई अज्ञानतावश प्रकट में हमारा विरोध भी करे तो हमें उदार होना चाहिए, प्रकट में उसका प्रतिकार करने की आवश्यकता पड़े तो भी भीतर से उसके प्रति उदार होना चाहिए। यहाँ यदि हम कट्टर होते हैं तो हम अपना ही कार्यक्षेत्र सीमित करते हैं और हमारी अपनी साधना की गति को ही अवरुद्ध करते हैं। ऐसे में जो कट्टरता स्वयं के प्रति गुण थी वह यहाँ आकर अवगुण बन जाती है और स्वयं के प्रति उदारता जहाँ अवगुण थी वह यहाँ आकर गुण बन जाती है। उदाहरण के लिए संघ ने एक स्वयंसेवक के लिए आहार की आचार संहिता बनाई कि एक साधक को तामसिक खान पान से बचकर रहना चाहिए और इसके तहत माँस व मदिरा सेवन न करने का परामर्श दिया है। एक स्वयंसेवक के रूप में मुझे इस परामर्श को मेरे लिए आदेश मानकर कट्टरता पूर्वक इसका पालन करना चाहिए। किसी भी प्रकार की ढील या छूट अपने लिए नहीं लेनी चाहिए और ना ही इस विषय में अपने आपको माफ करना चाहिए। इसमें यदि मैंने उदारता बरती तो वह मेरे लिए घातक होगी।

लेकिन यह भी समझना चाहिए कि यह आचार संहिता एक स्वयंसेवक के लिए है और एक स्वयंसेवक के रूप में इसका पालन करूं लेकिन जो संघ को समझता नहीं है, जानता नहीं है, जो पर्याप्त गहराई तक संपर्क में नहीं आया है उसके प्रति यदि मैं ऐसी कट्टरता रखूंगा तो उसको साथ कैसे ला पाऊँगा। केवल कुछ सामान्य विधि निषेध ही उसकी नजर में संघ की परिभाषा बन जाएँगे और वह संघ के उस स्वरूप से परिचित ही नहीं हो पाएगा जिस स्वरूप के बल पर व्यक्ति ऐसे सभी विधि निषेधों को सहर्ष स्वीकार करता है। इस संबंध में संघ के माननीय संरक्षक महोदय द्वारा बताई एक घटना हमारा मार्गदर्शन करती है। वे सुबह प्राय: जल्दी उठते हैं, एकबार वे उठे और स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण वापिस लेट गये लेकिन कुछ ही क्षणों में उनको लगा कि वे सो कैसे सकते हैं, यदि वे ही इस प्रकार उठकर सोने लगेंगे तो फिर लोगों को उठने के लिए कैसे कह सकेंगे और वे स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर भी उठे और नित्य कर्मों से निवृत होकर शाखा में शामिल हुए। यह है स्वयं के प्रति कट्टरता लेकिन वहीं उनकी उदारता के भी हमें दर्शन होते हैं। स्वयं के जल्दी उठने के कारण मेरे पास में सो रहे व्यक्ति की नींद में विघ्न नहीं पड़ना चाहिए इसका वे पूरा ध्यान रखते हैं। आहट की आवाज भी न आये इसकी भी पूरी सावधानी बरतते हैं और उनके साथ रहने वालों को प्राय: यह अनुभव होता है कि उनकी नींद खुलने से पूर्व वे अपनी दैनिक कर्मों व भजन आदि से निवृत हो जाते हैं और पास में सो रहे व्यक्ति की नींद तक नहीं खुलती।

यही है कट्टरता और उदारता का सम्यक संतुलन और इसी संतुलन के भरोसे हम हमारी सांघिक साधना में निरंतर गतिशील हो सकते हैं। यदि यह संतुलन बिगड़ता है तो हम हमारी और संघ कार्य दोनों की गति के अवरोधक बनते हैं। आयें हम परमेश्वर से प्रार्थना करें कि उनकी कृपा के बल पर हमारे जीवन में कट्टरता और उदारता का सम्यक संतुलन विकसित हो सके और हमारी यह समझ निरंतर विकसित होती रहे कि हमें कहाँ उदार होना है और कहाँ कट्टर। ❑

केवल चकाचौंध ही काफी नहीं है, वस्तु की वास्तविक कीमत उसकी उपयोगिता है।

– पू. तनसिंहजी

राजपूत नारी सब पर भारी

– कर्नल हिम्मतसिंह पीह

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति-रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

राजपूत नारी के हृदय और व्यक्तित्व में पृथ्वी की क्षमता, सूर्य का तेज, समुद्र की गहराई, चन्द्रमा की शीतलता और पर्वतों का होसला समाहित है। वह शक्ति, भक्ति, सतीत्व और त्याग की प्रतिमूर्ति है। क्षत्रिय नारी दया, करुणा, ममता और प्रेम की पवित्र मूर्ति है तो समय पड़ने पर प्रचण्ड चण्डी भी है। वह सभी देश, काल और परिस्थितियों में अपने को नि:संदेह उत्कृष्ट साबित करने में सक्षम रही है और है भी।

वैदिक और मध्यकालीन युग से हमारी मातृशक्ति को देवी तुल्य माना जाता रहा है। और भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के अनुसार सदियों से उसे श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा गया है।

सकारात्मक दृष्टि से देखें तो वर्तमान समय में भी हमारी महिलाएँ आगे बढी हैं और हर क्षेत्र में अपना परचम लहराया है। उन्होंने अपनी प्रतिभा, दक्षता, क्षमता, अभिरुचि और रुझान को पहचाना है। उनमें यह विश्वास जगा है कि प्रभु ने उन्हें अनेक गुणों से नवाजा और निखारा है।

इसी विश्वास की अभिव्यक्ति से रूबरू होने के लिए राजपूत समाज की प्रतिकात्मक प्रतिभाओं की झलकी प्रस्तुत कर उपरोक्त प्रत्यय के प्रति आश्वस्त होने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

परिचय का श्री गणेश करते हैं, आध्यात्म जगत की महान-विभूति बाला सतीमाता (बापजी) से। रूपनगर-जोधपुर की बेटी रूपकंवर अंशावतार के रूप में प्रकट हुई जो आगे चलकर एक आध्यात्मिक प्रकाश-पुंज के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

सती बापजी भक्तमति मीरा के मरु प्रदेश में ईश्वर की सत्ता में दृढ़ विश्वास जागृत करने, दुखियों का दुख हरने और जनमानस को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दर्शाने के लिए अवतरित हुई। उन्होंने करीब 43 वर्षों तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये स्वस्थ रहकर कबीर के इस सूत्र में विश्वास पैदा कर दिया कि, ''जा को राखे साइयां मार सके न कोय।''

ग्रामीण परिवेश में सहज आध्यात्मिक जीवन अपना कर जन मानस को साधना का पथ दर्शाने हेतु उन्होंने स्वयं के जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है।

राजनीति– राजनीति के क्षेत्र में नाडगाँव महाराष्ट्र की बेटी और सीकर राजस्थान की बहु, श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह शेखावत को देश की प्रथम और अब तक की अकेली महिला राष्ट्राध्यक्षा रहने का गौरव प्राप्त है।

इसी क्षेत्र में गोपाल गंज बिहार की बेटी श्रीमती रामदुलारी सिन्हा उन गिने चुने सांसदों में शरीक है जिनको भारत के प्रथम तीन प्रधान मंत्रियों के सान्निध्य में अपना दायित्व निभाने का सौभाग्य प्राप्त है। वह इन्दिरा गांधी और राजीव गाँधी सरकार में मंत्री रही। बिहार की वह प्रथम महिला जिनको शैक्षणिक स्नातकोत्तर की उपाधि प्रदान की गई। साथ ही वे बिहार की पहली महिला है जिन्हें राज्यपाल के पद की शोभा बढ़ाने का गौरव प्राप्त है। वे 23 फरवरी, 1988 से 12 फरवरी, 1990 तक केरल की राज्यपाल थी।

इसी कड़ी में ग्राम फिगेश्वर जिला रायपुर-छत्तीसगढ़ की बेटी और सरायपाली राजघराने की बहु श्रीमती उर्मिला सिंह को हिमाचल प्रदेश की प्रथम महिला राज्यपाल रहने का गौरव प्राप्त है।

जोधपुर राजघराने की बेटी और कांगड़ा हिमाचल प्रदेश की बहु महारानी चन्द्रेश कुमारी कटोच ने 28 अक्टूबर, 2012 को केन्द्र में संस्कृति मंत्रालय का कार्यभार संभाला और प्रशंसनीय काम किया।

राजमाता विजया राजे सिंधिया-लेखा दिव्येश्वरी

(विवाह पूर्व का नाम) सागर म.प्र. की बेटी और ग्वालियर राजघराने की बहु थी। हिन्दुत्व विचारधारा की हिमायती और अयोध्या में राम-मंदिर निर्माण की पक्षधर थी। जनसंघ-भाजपा आप ही के संरक्षण में पनपी जो वर्तमान में नौ राज्यों के साथ देश की बागडोर संभाल रही है।

राजमाता गायत्री देवी-कूच बिहार की बेटी और जयपुर की महारानी बहुमुखी व्यक्तित्व की धनी थी। विश्व की प्रथम दस सुन्दर महिलाओं में सुमार वे फैशन जगत की रोल-मॉडल थी। लोकप्रियता इस कदर की 1962 में जयपुर ग्रामीण संसदीय क्षेत्र से समूचे देश में सर्वाधिक बहुत से चुनाव जीतने का कीर्तिमान स्थापित किया। आकर्षक छवी ऐसी की उनकी एक झलक पाने के लिए दुनियां तरसती थी। बालिका शिक्षा को महत्त्व देने, पर्यटन का विकास और जयपुर की लुप्त होती कला और संस्कृति को संबल प्रदान करने के लिये उन्हें श्रद्धा के साथ सदैव याद किया जाएगा।

साहित्य- साहित्य जगत में सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान और रानी लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत का योगदान कल्पनातीत है।

सुभद्रा कुमारी निहालपुर उ.प्र. की बेटी और खण्डवा म.प्र. की बहु थी। वह स्वतंत्रता-संग्राम की पहली महिला सत्याग्रही थी। उन्हें राष्ट्रीय चेतना की अमर गायिका तथा वीर रस की एकमात्र हिन्दी कवयित्री माना जाता है। उनकी 'झाँसी की रानी' शीर्षक वाली कविता सर्वाधिक लोकप्रिय है।

सुश्री लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत देवगढ-मेवाड़ की पुत्री और रावतसर-बीकानेर की बहु थी। स्वतंत्रता संग्राम में वह अपने लेखों के माध्यम से जन चेतना का काम करती थी। राज्य की राजनीति में लम्बे अर्से तक सक्रिय रहकर वे राज्यसभा की सदस्य भी रही। विदेशों में आयोजित अनेक महत्त्वपूर्ण आयोजनों में आपने भारत का प्रतिनिधित्व किया और भारत-सोवियत मैत्री को सुदृढ बनाने में अहम् भूमिका निभाई।

लोक संस्कृति और साहित्य के विकास में आपका अविस्मरणीय योगदान रहा। पद्मश्री से विभूषित महानायिका को 'राजस्थान रत्न' के सम्मान से भी नवाजा गया था।

न्यायिक क्षेत्र- हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री स्व. वीरभद्र सिंह की पुत्री अभिलाषा कुमारी गुजरात उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद पर रहकर त्रिपुरा उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश रह चुकी है। 23 मार्च, 2019 को उन्हें लोकपाल कमेटी में जुडिशियल मेम्बर नियुक्त किया गया था।

जोधपुर की ऐश्वर्या भाटी उच्चतम न्यायालय में वरिष्ठ अधिवक्ता का पद पाने वाली राजस्थान की पहली महिला है। वर्तमान में वह अतिरिक्त महाधिवक्ता के पद पर नियुक्त है और 30 जून, 2023 तक इस पद पर बनी रहेंगी।

विदेश सेवा- सुश्री सावित्री कुनाडी पूर्व विदेश सेवा अधिकारी हैं जिन्हें फ्रांस में भारत का राजदूत रहने का गौरव प्राप्त है।

प्रशासनिक अधिकारी- सुश्री राधा सिंह सुपुत्री सर टी. पी. सिंह पूर्व आई.सी.एस. अधिकारी, पूर्व भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी है। ग्रामीण और कृषि विकास, सहकारिता, जल संसाधन, पब्लिक फाइनेन्स और इन्स्टीट्यूट बिल्डिंग में आपके योगदान को आज भी याद किया जाता है। सचिव कृषि एवं सहकारिता विभाग के पद से सेवानिवृत होने के उपरान्त आप यश बैंक को अपनी सेवाएँ देती रही हैं।

परमार्थ- उत्तरकाशी के झंकोली गाँव की ममता रावत युवाओं के लिए आदर्श और महिला सशक्तिकरण की मिसाल बन गई है। जून, 2013 की केदारनाथ आपदा में जगह-जगह फंसे सैकड़ों पर्यटकों और यात्रियों को सुरक्षित निकालने वाली ममता की हिम्मत और जज्बे को सलाम।

खेल जगत :

खेल कूद और साहसिक गतिविधियों में हमारी प्रतिभाओं की विशेष दिलचस्पी रही है।

सुश्री भुवनेश्वरी कुमारी अलवर राजघराने से ताल्लुक रखती है। 16 वर्षो तक महिला राष्ट्रीय स्कॉश चैम्पियन रहकर आपने एक अनुपम कीर्तिमान स्थापित

किया है। दो अन्तर्राष्ट्रीय मुकाबलों में भी विजयी रह चुकी हैं। अर्जुन अवार्ड और पद्मश्री से सम्मानित भुवनेश्वरी ''लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स'' में भी अपना नाम दर्ज करा चुकी हैं।

सुश्री राज्यश्री एक दक्ष निशानेबाज है जिन्होंने मात्र सात वर्ष की आयु में नेशनल एयर राइफल प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त कर एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया। निशानेबाजी में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुकाबलों में अनेक पदक अपनी झोली में डाल 16 वर्ष की आयु में ही अर्जुन अवार्ड से सम्मानित होने का गौरव प्राप्त किया।

सुश्री अपूर्वी चन्देला भारत की स्टार निशानेबाज है जिन्होंने 2014 में हुए ग्लासगो कॉमनवेल्थ गेम्स में स्वर्ण पदक जीत कर, एक वर्ष बाद ही वर्ल्ड कप में ब्रॉन्ज मेडल जीत सुर्खियाँ बटोरी। दो बार ओलम्पिक का सफर तय कर चुकी अपूर्वा को अर्जुन अवार्ड से भी नवाजा जा चुका है।

सुश्री श्रेयसी सिंह अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त निशानेबाज होने के साथ ही बिहार विधानसभा में भा.ज.पा. की विधायक भी है। इसी वर्ष के प्रारम्भ में आयोजित ऑनलाइन एशियन शूटिंग चैम्पियनशिप में उन्होंने रजत पदक जीता। श्रेयसी सिंह अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित की जा चुकी है।

सुश्री निशा कंवर, मेहरोली सीकर की रहने वाली है। इन्होंने वर्ल्ड शूटिंग पैरा स्पोर्टस स्पर्धा में भाग लेकर दो स्वर्ण पदक जीते हैं।

सुश्री सुधा सिंह रायबरेली एक्सप्रेस के नाम से विख्यात सुधा अमेठी उ.प्र. के गाँव की रहने वाली हैं। एथलेटिक्स में सबसे कठिन स्पर्धा मानी जाने वाली 'स्टीपलचेज' में अपना लोहा मनवाने वाली सुधा ने अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं में पदक जीत देश का नाम रोशन किया है। अर्जुन पुरस्कार के अतिरिक्त पद्मश्री से सम्मानित होने वाली उ.प्र. की वह दूसरी महिला है।

सुश्री आंचल ठाकुर-मनाली हिमाचल प्रदेश की आंचल महिला अल्पाइन स्कीयर है। उन्होंने देश को स्कीइंग में पहला अंतर्राष्ट्रीय पदक दिलाया था। तुर्की में आयोजित 'अल्पाइन एडर-3200 कप टुर्नामेन्ट' में कांस्य पदक जीता है।

सुश्री रूपासिंह जोधपुर की रूपा को भारत की प्रथम महिला जॉकी (Jockey) बनने का गौरव प्राप्त है। अब तक रूपा ने 750 से अधिक रेसिंग मुकाबले जीते हैं जिनमें कुछ अन्तर्राष्ट्रीय मुकाबले भी हैं। पालैण्ड की प्रतियोगिता उसके लिए यादगार बनी जहाँ उसने दुनिया के मशहूर जॉकी को पछाड़ा था। तापसी पन्नु रूपा की जीवनी पर एक Biopic बना रही है।

मेजर दीपिका राठौड़ भवादिया नागौर की बेटी को दो बार माऊंट एवरेस्ट पर तिरंगा फहराने का गौरव प्राप्त है। वह राजस्थान की पहली और भारतीय सेना की अकेली महिला है जिसने यह कीर्तिमान अपने नाम किया है। उन्हें विशिष्ट सेवा मेडल से नवाजा जा चुका है।

कला और फैशन :

सुश्री कंगना रनौत (राणावत) हिमाचल प्रदेश की शान, प्रसिद्ध अभिनेत्री जो बॉलीवुड की क्वीन के रूप में विख्यात है। पद्मश्री से विभूषित कंगना को तीन राष्ट्रीय फिल्म, चार फिल्म फेयर, तीन अंतर्राष्ट्रीय भारतीय फिल्म अकादमी पुरस्कार और प्रत्येक स्क्रीन जी सिने और प्रोड्यूसर्स गिल्ड, पुरस्कार समारोह से एक एक पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है।

सुश्री मान्यासिंह-उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले के विक्रम विशुनपुर निवासी ओम प्रकाश सिंह जो बम्बई में रिक्शा चालक है कि पुत्री मान्या सिंह को 2020 में फेमिना मिस इण्डिया रनर अप घोषित कर सम्मानित किया गया था।

गौरवान्वित :

हमारी उपरोक्त प्रतिभाओं की उपलब्धियों पर हमें नाज है। हम समाज को गौरवान्वित करने के लिए उनके प्रति कृतज्ञता भी प्रदर्शित करते हैं परन्तु आत्मसंतुष्टि नहीं। क्योंकि समय परिवर्तनशील होने के साथ ही प्रगतिशील भी है। भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है? हमें नहीं पता।

इसलिए नई चुनौतियों से निपटने के लिये हमें सदैव तैयार रहना होगा।

इक्कीसवीं सदी में संचारक्रान्ति ने लोगों को जागृत ही नहीं किया, महत्त्वाकांक्षी भी बनाया है। हर व्यक्ति अपने आपको श्रेष्ठ साबित करने में मशगूल है और अपने आपको येन-केन-प्रकारेण शिखर पर स्थापित करना चाहता है। किन्तु हमारे लिए साध्य जितना महत्त्वशाली है उतने ही साधन। हम चोरी करके धनाढ्य नहीं बनना चाहते और न नकल करके, प्रकाण्ड पण्डित। नैतिकता को हम कभी तिलांजलि नहीं दे सकते। हम आरक्षण की बैशाखी के सहारे भी शिखर पर नहीं पहुँचना चाहते।

हमारी भविष्य की चुनौतियाँ आसान नहीं हैं। हमें अपने आपको श्रेष्ठ ही नहीं, शिष्ट और विशिष्ट भी साबित करना होगा। ❑

पृष्ठ 13 का शेष

मेरी साधना

कोई भी जाति अपना कर्तव्य, उत्तरदायित्व छोड़कर भोग, विलास और स्वार्थ में रत रहती है तभी वह बीमार कही जाती है। हम अपनी जाति माता का रुदन सुनकर क्षात्र-धर्म का पालन करना शुरू करें तभी माता की बीमारी मिटेगी। जाति जागृत, स्वस्थ और सबल होगी। जागृत और सबल व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के लक्षण हैं-धन समृद्ध, तन समृद्ध, धर्म समृद्ध, विचार समृद्ध, विवेक समृद्ध, कर्तव्य समृद्ध। हम अपनी जाति, समाज को इन कसौटियों से गुजार कर तय करें, क्या हम जागृत, सबल हैं? उत्तर 'ना' हो तो श्री क्षत्रिय युवक संघ व्यक्ति को, समाज को, राष्ट्र को जागृत और सबल बनाने हेतु सामुहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली द्वारा पद्यतिसर, नियमानुसार मनोवैज्ञानिक रूप से शिक्षा दे रहा है। देर न हो जाए इसलिए संघ को स्वीकार कर, जीवन व्यवहार में उतार कर, पुरुषार्थी बनकर, कौम की इज्जत, यश, कीर्ति बढाकर हमारी जाति को धन्य बना लें। क्षत्रिय को क्षात्रधर्म-पालन करने की जिम्मेदारी ईश्वर प्रदत्त है, न कि हमारी अपनाई हुई। ईश्वर की आज्ञा का पालन करने वाले व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर ईश्वरीय कृपा बरसती है। हम उसकी आज्ञा का पालन करें। हम पर, हमारे समाज पर, हमारे राष्ट्र पर ईश्वरीय आशीर्वाद की वर्षा होगी। **अर्क** - कंटकाकीर्ण और कठिन मार्ग है क्षात्रधर्म का।

❑

पृष्ठ 15 का शेष

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

का प्रयास किया ही है। पर बाद के लेखकों की कल्पनाओं और समसामयिक विवशताओं (आगे वर्णित) ने भी इस कृति का हरण किया है।

माना कि इतिहास केवल क्या हुआ ये बताते रुखे तथ्यों का पिटारा नहीं, इतिहास में समावेश होता है इसका कि किसी घटनाक्रम के बाद की सदियों में लोगों ने उसे किस प्रकार देखा समझा और परिलक्षित और उस दृष्टि में देखें तो रासो में निहित दैत्यों व देवों की कथाएँ, पूर्व-जन्मोक्तियाँ, युगान्तरों की काल यात्राएँ, क्षत्रियों को दिए शाश्वत संदेश। ये सभी रासो काल के सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को चिन्हित करते हैं।

पर रासो ने इस प्रकार केवल उत्तर-पृथ्वीराज कालीन इतिहास के पक्षों का ही सही वर्णन किया, पृथ्वीराज कालीन इतिहास नहीं।

मिथकों के लिए रासो से अधिक उत्तरदायित्व उसके अंधे प्रचारकों का है। आख्यान शैली के रासो ने स्वयं यह दावा नहीं किया कि वो सटीक इतिहास का ग्रन्थ है। इससे अधिक रासो का आलोचनात्मक आंकलन इस काव्य पर अत्याचार होगा और हम विषयवस्तु से भी भटक जाएँगे। रासो के जगविदित मिथकों से अनावश्यक झड़प ना हो, इसलिए लेख-शृंखला में आगे हम रासो के लघु संस्करण का ही अधिकतम प्रयोग करें जिसमें मिथकों की मात्रा कम है। **(क्रमशः)**

माता का दायित्व

– गोविन्द सिंह कसनाऊ

सुभद्रा अपने शयन कक्ष में जागृत अवस्था में सोई हुई थी। सुभद्रा ने अर्जुन से युद्ध में चक्रव्यूह भेदने तथा चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि जानने की इच्छा प्रकट की। अर्जुन युद्ध में चक्रव्यूह भेदने की विधि बताने लगा। सुभद्रा ने चक्रव्यूह भेदने की विधि बहुत ही ध्यान से सुनी परन्तु जब अर्जुन युद्ध में चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि बताने लगा सुभद्रा को निद्रा आ गई।

सुभद्रा जब चक्रव्यूह भेदने की विधि सुन रही थी, उसकी संवेदना स्नायु तंत्र द्वारा उसके संपूर्ण शरीर में फैल रही थी। संवेदना माता सुभद्रा के गर्भ में वृद्धि कर रहे पुत्र अभिमन्यु के अचेतन मस्तिष्क को भी प्रभावित कर रही थी। चक्रव्यूह भेदने की संपूर्ण विधि अभिमन्यु के अचेतन मस्तिष्क (UN CONSCIOUS MIND) में संचित हो गई, परन्तु माता के नींद में होने के कारण युद्ध में चक्रव्यूह से बाहर निकलने की संवेदना अभिमन्यु के अचेतन मस्तिष्क तक नहीं पहुँच सकी।

कौरव-पाण्डवों के मध्य युद्ध में अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भेद दिया, क्योंकि अचेतन मस्तिष्क में चक्रव्यूह भेदने की विधि संचित थी, परन्तु युद्ध में चक्रव्यूह से बाहर नहीं निकल सका, क्योंकि चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि उसने किसी से सीखी ही नहीं थी।

विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण मैं मानता हूँ कि प्राणी का प्रारम्भ एक कोशीय युग्मनज (ZYGOTE) से होता है, सीखने की प्रक्रिया उसी समय से शुरू हो जाती है और जीवन पर्यन्त चलती है। युग्मनज की आवश्यकता आश्रय तथा भोजन होती है और उसे प्राप्त करने हेतु वह अपने आपको माता के गर्भाशय की भित्ति से चिपकाकर सीख जाता है। भोजन तथा प्राण वायु (ऑक्सीजन) वह गर्भाशय की भित्ति से प्राप्त करता है तथा अपने शरीर में निर्मित अपशिष्ट पदार्थों का परित्याग माता के रक्त प्रवाह में करता है।

माता के भोजन, भाषा, व्यवहार, आचरण, सोच-विचार, सुख-दुःख तथा अन्य सभी क्रियाओं का प्रभाव विकसित होने वाले भ्रूण (EMBRYO) पर पड़ता है। अर्थात् सीखने की प्रक्रिया गर्भावस्था में जारी रहती है। मातृशक्ति को इस काल में सभी सावधानियाँ रखनी चाहिए ताकि उसके गर्भ में पल रहे पुत्र-पुत्री पर बुरा प्रभाव नहीं पड़े। विकलांग बच्चों का जन्म माता की असावधानी से होता है।

बच्चे के जन्म लेने पर सर्वप्रथम वह अपनी माँ को ही देखता है, स्पर्श करता है, उसकी भाषा सुनता है अर्थात् सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपनी माँ से ही सीखता है। अनुवांशिकता, वातावरण, परिवार के अन्य सदस्यों, मित्रों, शिक्षकों तथा समाज आदि की तुलना में शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास पर माता का प्रभाव सर्वाधिक होता है। बच्चा अनुकरण तथा अनुशरण दोनों क्रियाएँ माता से करता है। माता का आचरण, भाषा, व्यवहार, भोजन, संवेग, सुख-दुःख, चिन्तन आदि सभी क्रियाएँ प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से विकसित हो रहे बच्चे के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा भाषा विकास को प्रभावित करते हैं। इसलिए माता को बालक का प्रथम शिक्षक माना जाता है।

अतः क्षत्रिय मातृशक्ति से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे क्रियाएँ- मन, वचन तथा कर्म से नहीं करें जो आप अपने बच्चे में देखना नहीं चाहती। उदाहरणार्थ- बच्चा अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु रोता है। अज्ञानतावश माता अपने बच्चे को शान्त करने हेतु कह देती है, ''बिल्ली या कुत्ता आ रहा है, खा जाएगा, वरना चुप हो जाओ।''

बच्चा भयवश चुप हो जाता है परन्तु बड़ा होकर वह बच्चा कुत्ता तथा बिल्ली से भी डरता है। तथा सदा के लिए डरपोक बन जाता है। स्वप्न भी डरावने लेता है

(शेष पृष्ठ 33 पर)

निष्काम कर्म

– भागीरथसिंह लुणोल

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। वस्तुत: मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म ही प्रारब्ध बनता है। इसे यूं समझें कि किसान जो बीज खेत में बोता है, उसे ही फसल के रूप में वह बाद में काटता है।

आज मनुष्य सबसे ज्यादा कर्मशील है और श्री कृष्ण की गीता कर्मयोग के माध्यम से कर्म के रहस्य को समझाती है। वह आज के वर्तमान जीवन में मनुष्य के लिए सबसे ज्यादा कारगर सिद्ध हो सकती है। ये हजारों साल पुराना ग्रन्थ हमें आज के आधुनिक जीवन में जीने के लिए नया दृष्टिकोण दे सकता है।

न ही कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।।

अर्थात् नि:संदेह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वार पर वश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। ये प्रकृति गुण व्यक्ति में परिवर्तनशील भी होते हैं। जब मनुष्य का मन प्राकृतिक गुणों के कारण विचलित होता है तो वो अपने काम को संपूर्णता से नहीं कर पाता और इसका मुख्य कारण है– हम लोग कार्य करते हुए उसके लाभ–हानि के विषय में सोचते हैं। अपने कार्य को सिर्फ फायदे के लिए करना, इन सब से मनुष्य अहंकार और और प्रतिस्पर्धा की भावना से युक्त होकर कार्य करता है, जिसकी वजह से मनुष्य हमेशा चिंता ग्रसित तथा भययुक्त रहता है। कोई काम अपने आप में छोटा और बड़ा नहीं है। बस जरूरत है अपने कार्य को बिना उसमें आसक्त हुए करने की अर्थात् फल की चिंता न करते हुए उसमें पूर्ण रूप से लगने की। पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा है कि मनुष्य के चरित्र का निर्माण उसके अच्छे या बुरे कर्मों से होता है।

कोई भी मनुष्य क्षण भर भी कर्म किए बगैर नहीं रह सकता है। आज के परिवेश में विचार किया जाने की आवश्यकता यह है कि क्या हम क्षण-प्रतिक्षण, दिन–प्रतिदिन जो कर्म कर रहे हैं, वह हमें जीवन में ऊँचाई की तरफ ले जा रहे हैं या कहीं लापरवाही हमें नीचे तो नहीं गिरा रही हैं? हम अच्छे कर्मों के सहारे स्वर्ग में जा सकते हैं और बुरे के द्वारा नरक में। मानव को ही प्रभु ने शक्ति प्रदान की है कि अपने अच्छे कर्मों के सहारे वह जीवन नैया को पार लगा सके। प्रभु को अपने से ज्यादा उसके बनाए गए नियम प्रिय हैं। जो नियमों में बंधकर जीवन यापन करता है वह लक्ष्य की प्राप्ति नि:संदेह करता है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में हमेशा जीवन में कैसे दिनचर्या में नियमितता, निरंतरता लाकर कर्म कर सकें उसका बखूबी खेलों के माध्यम से, निष्काम कर्म पर बौद्धिक शिक्षण के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है कि हम कर्म को यदि पूजा बना लें तो बंधनों से मुक्ति भी सम्भव है। फल की आकांक्षा को त्यागकर, नियत एवं विहीत कर्म करने का अभ्यास करवाया जाता है। कर्म में अहंता एवं कर्तापन का भाव नहीं होना चाहिए।

जब हमारा मन लाभ हानि के विचार से दूर होकर कोई कार्य करेगा तो उसके परिणाम भी अच्छे होंगे और एक आत्मसंतुष्टि मिलेगी क्योंकि तब अपने कार्य को पूजा बना लिया और अध्यात्म से जुड़ गया। समझने की जरूरत है कि अपने काम को कैसे बिना आसक्त हुए अंजाम दिया जा सकता है यानी बिना फल की चिंता किए हुए लाभ, हानि की व्यर्थ चिंता से दूर होकर काम करना जिससे आप अध्यात्म की तरफ अग्रसर होंगे और मानसिक स्वास्थ्य को पाकर जीवन में परम आनन्द को प्राप्त होंगे।

गीता में जब अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं – 'हे भगवान! जब उस परम सत्ता को पाने के अनेक मार्ग हैं जैसे ज्ञान और भक्ति भी तो आप मुझे इस युद्ध में क्यों धकेल रहे

हैं? तब भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-'हे अर्जुन! तुम क्षत्रियों में श्रेष्ठ हो और तुम्हारा धर्म है युद्ध लड़ना तुम इस काम को ही संलग्नता से कर पाओगे और यही तुम्हारे लिए उचित मार्ग है। इसी मार्ग से तुम उस परम सत्ता तक पहुँच सकते हो। चलो उठो और युद्ध करो तुम बिना फल की चिंता किए हुए युद्ध करो। इसी में तुम्हारा हित छिपा है तुम ये मत सोचो कौन मेरा संगी साथी है कौर पारिवारिक सदस्य है? ये मत सोचो कि इनको मारकर मुझे सत्ता भोगने का क्या मजा आएगा। तुम युद्ध के बाद होने वाले लाभ हानि की व्यर्थ चिंताओं में न पड़ो तुम बिना आसक्त हुए अपना कार्य करो और तुम जो चाह रहे हो उस परम ज्ञान को प्राप्त करना तो वो इसी मार्ग से प्राप्त होगा।'

सदैव संघ के शिविरों में शिक्षण के रूप में यही बताया जाता है कि कोई भी क्षण ऐसा नहीं है जहाँ मनुष्य बिना कर्म किए रहे। यह मनुष्य के जीवन का ही प्रश्न नहीं है, अपितु आत्मा का यह स्वभाव है कि वह सदैव सक्रिय रहता है और एक क्षण के लिए भी नहीं रुक सकता।

जो व्यक्ति अपनी इंद्रियों को वश में तो करता है, किन्तु जिसका मन इन्द्रिय विषयों का चिंतन करता रहता है। वह निश्चित रूप से स्वयं को धोखा देता है और मिथ्याचारी कहलाता है। पूज्य श्री अपने द्वारा लिखी गयी गीता और समाज सेवा पुस्तक में कहते हैं कि वे मनुष्य सबसे बड़े धूर्त हैं जो अपने कार्य इन्द्रिय सुख के लिए करते हैं और जो अपने आप को योगी बताते हुए इन्द्रिय तृप्ति के विषयों की खोज में लगे रहते हैं। वह व्यक्ति निष्ठावान है जो अपने मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करता है और बिना आसक्ति के कर्मयोग करता है क्योंकि जो व्यक्ति स्वार्थ से रहित होकर अपने कर्म करता है वह अपने लक्ष्य को भी पा सकता है। एक गृहस्थ व्यक्ति भी अपने ईश्वर रूपी प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार के निष्ठावान व्यक्ति उस धूर्त व्यक्ति से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं, जो धार्मिक बनकर आध्यात्मिकता का आवरण ओढ़कर जनता को ठगता है। यह सर्वविदित है कि अच्छे या बुरे कर्मों के फल भी अलग-अलग होते हैं और कोई भी फल मनुष्य को बाँध लेता है।

संघ के शिविरों में खेलों, बौद्धिक एवं अन्य कार्यक्रमों में प्रशिक्षण यही दिया जाता है कि कर्मयोग का अर्थ अपने कर्म को पूरी एकाग्रता के साथ पूर्ण रूप से करना है और कोई भी कार्य पूर्णता के साथ तभी सम्भव है जब उसके बदले कुछ पाने की इच्छा न हो। उसका क्या परिणाम होगा इस तरफ मन न ले जाकर पूरी एकाग्रता के साथ किया जाए। जब इंसान अपना कर्म बिना आसक्त हुए करता है तो मनुष्य की सारी शक्तियाँ केन्द्रीभूत होती हैं और एक आध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न करती है और इस आध्यात्मिक ऊर्जा से जो ज्ञान प्राप्त होता है उससे मनुष्य सुख दुःख से पार होकर परम आनंद को भोगता है।

❑

पृष्ठ 31 का शेष

माता का दायित्व

क्योंकि उसके अचेतन मस्तिष्क में संचित भाव उसे प्रेरित (MOTIVE) करते हैं।

माता का दायित्व है कि अपने बच्चे को अच्छा वातावरण दे ताकि बालक का वांछित शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास हो सके। मातृशक्ति ही क्षत्रिय संस्कार-आन-बान-मान-मर्यादा का पाठ बालक को पढा सकती है तथा क्षत्रिय समाज में व्याप्त बुराइयाँ-शराब का सेवन, टीका लेना, दहेज लेना, विवाह में अत्यधिक खर्च करना, मृत्युभोज करना तथा अन्य बुराइयों के प्रति बालक में घृणा करने का भाव भर सकती है।

बाल्यावस्था में सीखी कविता की दो पंक्तियाँ लिखना उचित समझता हूँ -

जीजी आज सुना दे मुझ को,
फिर जोशीली वही कहानी।
जिसने भीषण युद्ध किया था,
वह थी झाँसी वाली रानी।।

अपनी बात

प्रभु की खोज में किस नाम से यात्रा पर निकला है कोई यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, किस शास्त्र को माना, यह भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण तो यह है कि उसका भाव श्रद्धा का था। वह चाहे राम को भजता हो, चाहे कृष्ण को भजता हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। वह भजता है, इससे फर्क पड़ता है। असली बात यह है कि वह प्रभु-मिलन के लिए आतुर है, उसकी वह श्रद्धा ही सार्थक है। किसी के हृदय में श्रद्धा का अविर्भाव होता हो, उसके चाहे कोई निमित्त न हो पर भीतर श्रद्धा का झरना बहता हो तो वह भी परमात्मा को उपलब्ध हो जाएगा।

श्रद्धा से क्या अर्थ है? श्रद्धा का अर्थ विश्वास नहीं है। जो विश्वास करते हैं उनके मन में अविश्वास भी छिपा होता है। उस अविश्वास को दबाने के लिए ही वे विश्वास करते हैं। विश्वास कभी भी अविश्वास को नहीं मिटा पाता। क्योंकि विश्वास होता ही किसी अविश्वास के खिलाफ है। विश्वास की जरूरत भी इसीलिए पड़ती है कि भीतर अविश्वास है।

श्रद्धा बड़ी और बात है। श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है। जिसके हृदय में अविश्वास नहीं, वह विश्वास भी नहीं करता। कोई कभी भी ऐसा नहीं कहता कि मैं सूरज में विश्वास करता हूँ। क्योंकि सूरज के प्रति अविश्वास है ही नहीं। पर ऐसा अक्सर कहा जाता है कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ। सूरज में विश्वास नहीं करते, क्योंकि हम जानते हैं कि सूरज है। जब संदेह ही नहीं है तो विश्वास करने का कोई सवाल ही नहीं। जब कोई बीमार ही नहीं है तो दवा लेने की जरूरत ही क्या है। श्रद्धा का अर्थ है अविश्वास उठता ही नहीं।

धर्म की यात्रा पर विश्वास से काम नहीं चलता। श्रद्धा की जगह पर विश्वास का नाम लिया जाता है, पर वह नकली है, उससे काम नहीं चलता। इसलिए तो संसार में इतने विश्वासी लोग हैं, फिर भी धर्म कहीं दिखाई नहीं देता। मंदिरों में विश्वासी लोग प्रार्थना कर रहे हैं लेकिन प्रार्थना का आनन्द विकीर्णित होता नहीं दिखाई पड़ता। वह हरियाली जो प्रार्थना से हमारे हृदय पर छा जानी चाहिए, वह नहीं छाती दिखाई पड़ती। हम रूखे-सूखे मरुस्थल ही रह जाते हैं। विश्वास धोखा है श्रद्धा का लेकिन धोखे से कुछ काम नहीं बनेगा। विश्वास डगमगाता ही रहेगा, क्योंकि विश्वास की कोई जड़ नहीं है। श्रद्धा नहीं डगमगाती। इसलिए श्रद्धा से ज्यादा अभय इस जगत में कोई चीज ही नहीं है। स्वयं भगवान भी श्रद्धावान को आकर कहे कि भगवान नहीं है, तो भी श्रद्धा अडिग रहती है। परन्तु विश्वास को तो कोई बच्चा भी तर्क पैदा कर डिगा देता है।

यह परमात्मा के सम्बन्ध की बात है। हमें पू. तनसिंहजी ने कहा कि संघ कार्य ईश्वर की आराधना ही है। इसकी चर्चा भी हम करते रहें और कहते रहें कि इसमें हमारा विश्वास है, पर क्या यह श्रद्धा की श्रेणी में है। संघ को ईश्वर आराधना मानने के प्रति क्या कभी अविश्वास की लहर नहीं उठती? अगर ऐसी हल्की-सी लहर भी उठती है तो श्रद्धा का अभाव स्पष्ट है। संघ की हमारी साधना गीता आधारित है इसलिए विश्वास तो बन जाता है, पर इस बात में अविश्वास का नितान्त अभाव जब तक निर्मित नहीं होता, तब तक यह श्रद्धा की बात नहीं है। संघ का काम हमारे व्यक्तित्व को संस्कारित करने का है, हमारे समाज में संस्कार निर्माण कार्य बढाने का है, एक सुदृढ़ संगठन बनाने का है, यह तो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। लेकिन यह सब कार्य ईश्वर का ही कार्य है, इसलिए जो कार्य हो रहा है वह आराधना का ही काम है क्योंकि हम उसी का काम कर रहे हैं। मालिक का काम करते हैं तो मालिक प्रसन्न होता है। आराधना मालिक को प्रसन्न करने के लिए ही तो होती है। हमारा कर्तव्य ईश्वर प्रदत कार्य है और उसे निभाना उसकी आराधना ही है। इस श्रद्धा को जागृत कर जीवन को रोशन करना है। ❑

हीरक जयंती

पर हार्दिक शुभकामनाएं

-: निवेदक :-

करण सिंह

सदस्य (राजभाषा विभाग)

गृह मंत्रालय, भारत सरकार

जनवरी सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 01

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह